❋ श्रीगणेशाय नमः, श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❋

श्रीजयदेवकविविरचितं-

गीतगोविन्दकाव्यम्

हिन्दीटीकासमेतम्

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥ १ ॥

एक समय राधिका, श्रीकृष्ण और एक सखी किसी वन में उपस्थित थे जब सन्ध्या हो गई तब सखी राधिका से बोली कि हे राधे ! यह आकाश मेघों से आच्छादित हो गया है और वन की भूमि भी तमालवृक्षों से श्यामवर्णा हो गयी है। और श्रीकृष्णचन्द्र रात्रि में डरते हैं इसलिये तुम्हीं इनको घर पहुँचा आवो, इस प्रकार नन्द की आज्ञा पाकर राधा और कृष्ण चले। उनके मार्ग के कुञ्ज तथा वृक्षों के बीच २ जमुना के तीर पर एकान्त की क्रीड़ायें बढ़ चढ़े (यह वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण है) ॥ १ ॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत-
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

श्री सरस्वतीजी के चरित्र से जिनका चित्त रूप गृह चित्रित हो रहा है और लक्ष्मी (राधिका) के चरणसेवकों में चक्रवर्ती श्रेष्ठ जयदेव कवि श्रीकृष्ण की रतिक्रीड़ा (रासलीला) विषयक यह प्रबन्ध (गीतगोविन्द) बनाता है ॥ २ ॥

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

यदि आप लोगों का मन भगवान् के स्मरण में लोलुप है और यदि विलासकलाओं को सुनने की उत्कट इच्छा है तो अति मधुर, कोमल और सुन्दर पदावली संयुक्त जयदेवकवि की वाक्यरचना सुनिये ॥३॥

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः ।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धन-
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ॥४॥

उमापतिधर कवि शब्दाडम्बर करने में निपुण थे (किन्तु उनकी कविता में अर्थगौरव नहीं) अर्थ और शब्द दोनों से वचन की सन्दर्भ-शुद्धि (ग्रन्थरचनाशैली) जयदेव कवि ही जानता है। और शरण नामक कवि क्लिष्ट काव्यरचना में चतुर था तथा गोवर्द्धनाचार्य की शृङ्गार रस की कविता के साथ कोई भी स्पर्द्धा (बराबरी) न कर सका और धोयी नामक कविराज एक बार कहने मात्र से धारण कर लेता था, किन्तु अर्थादि समझने में कुशल नहीं था ॥ ४ ॥

मालव राग तथा रूपक ताल से प्रथम भगवान् के दशावतार का वर्णन करते हैं—

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्, विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशव धृतमीनशरीर, जय जगदीश हरे ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे मत्स्यरूप को धारण करने वाले केशव ! आपने प्रलय के समय समुद्र में बिना परिश्रम मीन का स्वरूप धारण किया, अतः हे जगदीश ! हे हरे ! आपकी जय हो ॥ १ ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे, धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव धृतकच्छपरूप, जय जगदीश हरे ॥ २ ॥

हे कूर्म (कछुवा) का रूप धारण करने वाले केशव ! आपने अपनी बड़ी भारी पीठ पर पृथ्वी को धारण किया इसी से आपको पृथ्वी धारण (करने से व्रण) के चिह्न पड़ गये हैं । इसलिये हे जगदीश ! हे हरे ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव धृतसूकररूप, जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

हे सूकरावतार धारण करने वाले केशव ! आपके दाँतों पर लगी हुई पृथ्वी चन्द्रमा की कलङ्क रेखा के समान शोभित होती थी, अतः हे हरे ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव धृतनरहरिरूप, जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

हे नरसिंहावतार को धारण करने वाले केशव ! आपके करकमलों में जो विलक्षण नख हैं उनसे हिरण्यकशिपु के शरीर रूपी भ्रमर को विदारण किया, अतः हे जगदीश ! हे हरे ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन, पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव धृतवामनरूप, जय जगदीश हरे ॥ ५ ॥

हे वामनरूप को धारण करनेवाले केशव ! आपने अद्भुत वामनावतार को धारण कर बलिनामक दैत्य को ठगा और चरण के नखकमल से संसार को पवित्र किया, अतः हे जगदीश ! हे हरे ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव धृतभृगुपतिरूप, जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥

हे परशुराम के स्वरूप को धारण करने वाले केशव ! आपने परशुरामावतार में क्षत्रियों के रुधिर में जगत को स्नान कराकर संसार के पापों का और तीनों (दैहिक-दैविक-भौतिक) तापों का नाश किया, अतः हे जग० ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव * धृतरघुपतिरूप, जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

हे रामचन्द्र के रूप को धारण करने वाले केशव ! आपने इन्द्रादि दशदिकपतियों के अनुकूल युद्ध में रावण नामक राक्षसराज के दश मुखों को दशों दिशाओं को बलिदान दिया, अतः हे जग० ॥ ७ ॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव धृतहलधररूप, जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥

हे हल को धारण करनेवाले केशव ! आपने स्वच्छ शरीर पर मेघ के समान वस्त्र (नीलाम्बर) धारण किया, वह वस्त्र मानों हल के डर से आई हुई यमुना के सदृश मालूम पड़ता है, अतः हे जग० ॥ ८ ॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं सदयहृदय दर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश हरे ॥ ९ ॥

---

* 'धृतरामशरीर' इति पाठान्तरम् ।

हे बुद्ध रूप को धारण करनेवाले केशव! आपने जिनमें पशु-हिंसा है उन यज्ञविषयक श्रुतियों की निन्दा की है, अतः हे दयायुक्त अन्तःकरण वाले जगदीश० ॥ ९ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृतकल्किशरीर, जयजगदीश हरे ॥ १० ॥

हे कल्कि रूप को धारण करनेवाले केशव! आपने म्लेच्छों के वध के लिये धूमकेतु[1] के समान अपूर्व अवतार धारण किया अर्थात् आपने कल्कि अवतार लेकर म्लेच्छों का विनाश किया, अतः हे जगदीश०॥१०॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।
केशव धृतदशविधरूप, जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

हे दशविध रूप को धारण करनेवाले जगदीश! हे हरे! आपकी जय हो, और हे भक्तजनो! श्रीजयदेव कवि का वनाया हुआ, मनोहर, सुख तथा कल्याण देने वाला और संसार का तत्त्वस्वरूप इस स्तोत्र को सुनो अर्थात इसके सुनने से सब प्रकार के सुख होंगे ॥११॥

पहले कहे हुए दश अवतारों के कर्म संक्षेप से वर्णन करते हैं—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते वलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

हे जगदीश! (१) मत्स्यावतार लेकर वेदों को उद्धार करनेवाले (२) कूर्म्मावतार से जगत् को पीठ पर धारण करनेवाले (३) वराहावतार से पृथ्वी मण्डल को धारण करनेवाले (४) नृसिंहावतार

---

१ यह एक पुच्छल तारा है, जब आकाश में उदय होता है तब संसार में भारी उपद्रव करता है ।

धारण कर हिरण्यकशिपु का वध करनेवाले (५) वामनावतार से बलि को छलने वाले (६) परशुराम रूप से क्षत्रियों का नाश करनेवाले (७) रामावतार लेकर रावण का विनाश करनेवाले (८) बलरामावतार में हल को धारण करनेवाले (९) बुद्धावतार में दया का विस्तार करनेवाले (१०) कल्कि अवतार धारण कर म्लेच्छों का संहार करनेवाले इस प्रकार दशविध अवतारधारी श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम है ॥१२॥

अब दूसरा प्रबन्ध गुर्जरी राग प्रतिमठताल—

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल जय जयदेव हरे ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे लक्ष्मी के दोनों कुचों का आश्रयण करनेवाले ! हे कुण्डलधारी ! हे पुष्पमाला को धारण करनेवाले ! हे देव ! आपकी जय हो ॥ १ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥ २ ॥

हे सूर्यमण्डल के आभूषण ! अर्थात् सूर्यमण्डल में तेजः प्रदान करनेवाले ! हे सांसारिक दुःख का विनाश करनेवाले अर्थात् संसार के आवागमन के मिटाने वाले ! हे मुनिजनों के मानस (चित्त) के हंस स्वरूप ! हे देव ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

हे कालिय नाम सर्पराज के मद का विनाश करनेवाले ! भक्तजनों के आनन्ददाता ! हे यदुकुलरूपी कमल के सूर्य ! (यदुवंशियों को प्रफुल्लित करनेवाले) हे देव ! आप० ॥ ३ ॥

मधु-मुर-नरक-विनाशन गरुडासन ए ।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

हे मधु, मुर और नरक नामक असुरों के विनाशक ! हे गरुड़-वाहन ! हे देवताओं की क्रीड़ा के आदि कारण ! (अनेक अवतार धारण करके दैत्यों को मारकर इन्द्रादि देवताओं को प्रसन्न करने वाले !) हे देव ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ।
त्रिभुवनभवननिधान[1] जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

हे निर्मल कमल के पत्र के समान विशाल नेत्र वाले ! हे संसार रूपी बन्धन से छुड़ाने वाले ! हे त्रिलोकी रूप गृह के निधान स्वरूप ! हे देव ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे जानकीजी से आभूषित ! हे दूषण नाम के राक्षसराज का विनाश करनेवाले ! युद्ध में रावण को ध्वंस करनेवाले, हे देव ! आपकी० ॥६॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

हे नवीन मेघ के समान सुन्दर कान्ति वाले ! हे मन्दराचल को धारण करनेवाले ! हे लक्ष्मी के मुखरूपी चन्द्रमा के चकोर ! हे देव ! आपकी जय हो ॥ ७ ॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

हे देव ! हम लोग आपके चरणों में प्रणाम करते हैं, यह आप जानिये और प्रणत हम लोगों का कल्याण करिये हे देव ! आपकी जय हो ॥८॥

---

१ 'त्रिभुवनभवननिदानं' इत्यपि पाठः ।

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ए।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे देव! हे हरे! आपकी जय हो और यह श्री जयदेव कवि का बनाया हुआ, मङ्गलकारी मनोहर गीत पढ़नेवालों को आनन्ददायक है ॥६॥

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्नकाश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ।
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेदस्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः॥१०॥

श्री लक्ष्मी के वक्षःस्थल के आलिङ्गन करने से लगी हुई केसर चिह्नित (शृङ्गार के समय महारानी ने अपने स्तनों में जो केसर लगाया था वही श्रीकृष्ण के आलिङ्गन करने पर उनकी छाती में लग गया) वही श्रीकृष्ण के हृदय में लगा हुआ केसर मानो प्रत्यक्ष अनुराग (प्रेम) है। अथवा राधिकाजी ने श्रीकृष्ण के हृदय में मुद्रा (मोहर) कर दी है कि मेरी आज्ञा के विना इसको कोई भी स्पर्श न करे। और रति के परिश्रम से उत्पन्न स्वेद (पसीना) के प्रवाह से युक्त श्रीकृष्ण-चन्द्र का हृदय आप लोगों के कल्याण की वृद्धि करे ॥ १० ॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै-
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
वलद्बाधां* राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ १ ॥

वसन्त ऋतु में माधवीलता के पुष्पों से भी अधिक कोमल अंग वाली, निर्जन वन में श्रीकृष्णचन्द्रजी के पीछे बार बार घूमती हुई और अत्यन्त (बहुत) कामज्वर से उत्पन्न चिन्ता से व्याकुल (तिलमिलाने वाली) राधा से कोई सखी हास्यपूर्वक यह (वक्ष्यमाण गीत) बोली ॥ १ ॥

* 'चलद्बाधां' इति च पाठः ।

* अथ तृतीय प्रबन्ध । वसन्तराग रूपक ताल *

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते नृत्यति युवति-
जनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ ध्रु० ॥२॥

हे राधे! सुन्दर लौंग की लता के स्पर्श से मन्द मन्द वहती हुई मलयाचल की वायु से युक्त, तथा भौरों के झुंड से झंकारित, और कोयलों के कूक से कूजितनिकुञ्ज वाले और वियोगी जनों को दुःख देने वाले इस मनोहर वसन्त ऋतु में श्रीकृष्णचन्द्र युवती गोपिकाओं के साथ नाचते और विहार करते हैं ॥ २ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूह[1]निराकुलबकुलकलापे ॥ विह० ॥३॥

उन्मत्त करने वाले काम की इच्छा से पथिकों की स्त्रियों को विलापी कराने वाला अर्थात् इस वसन्त ऋतु में विरहिणी स्त्रियाँ काम से पीड़ित होकर विलाप किया करती हैं, बकुल-(मौलसिरी) के फूलों पर भँवरे व्याप्त हो रहे हैं ऐसे वसन्त ऋतु में श्रीकृष्णजी युवती गोपियों के साथ नृत्य और विहार करते हैं ॥ ३ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥ विह० ॥४॥

कस्तूरी के गन्ध के समान गन्धवाले नवीन पत्रों से सुशोभित तमाल के वृक्षों और युवक लोगों के हृदय का विदारण करने वाले कामदेव के नखों के सदृश पलास के पुष्प हैं विकसित जिसमें, ऐसे वसन्त ऋतु० ॥ ४ ॥

---

१ सुमनसमूह—' इति पाठः ।

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेशरकुसुमविकासे ।

मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृत*स्मरतूणविलासे ॥ विह० ॥५॥

फूले हुए नाग के पुष्प ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, कि मानो राजा कामदेव का सुवर्ण दण्डवाला छत्र होय। पाटली (गुलाब) के पुष्पों में बैठे हुए भ्रमर ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो कामदेव के तूणीर (तरकस) में बाण भरे होय। ऐसे वसन्त के समय श्रीकृष्णचन्द्र युवती गोपियों के साथ नृत्य और विहार करते हैं ॥ ५ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुणकृतहासे[१] ।

विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ॥विह०॥६॥

निर्लज्ज जगत् को देखने के लिये नवीन वरुण वृक्ष के पुष्प को विकसित कर मानों हास्य कर रहे हैं और वियोगी जनों को काटने के लिये भाले के नोक की तरह केतकी पुष्पोंसे व्याप्त दिशायें हैं। ऐसे वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण युवती गोपियों के साथ नृत्य० ॥ ६ ॥

माधविकापरिमलललिते नवमालतिजातिसुगन्धौ ।

मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ॥विह०॥७॥

माधवी लता की मनोहर सुगन्धित से अतिमनोहर, नवीन मालती और चमेली की सुगन्ध वाला, मुनिजनों के चित्त को भी मोहने वाला और युवक जनों का स्वाभाविक मित्र, ऐसे वसन्त काल में श्रीकृष्णचन्द्र गोपियों के साथ विहार और नृत्य करते हैं ॥ ७ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।

वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥ विह० ॥ ८ ॥

खिली हुई (या हिलती हुई) माधवी लता के आलिङ्गन से खिले हुए आम मानो पुलकित हो गए हैं, (जैसे चञ्चल स्त्री के आलिङ्गन

---

* 'पाटल' इति पाठः । १ 'अवलोकितकरुण' इति पाठः ।

करने से पुरुष रोमाञ्चित हो जाता है, उसी प्रकार लता [स्त्री] के आलिङ्गन करने से आम्र वृक्ष [पुरुष] मुकुलित और पुलकित हो गया अर्थात् आम के वृक्षों में मञ्जरी आगई) यमुना जल से वृन्दावन के आस पास की जमीन पवित्र हो गई है, ऐसे वसन्त में श्रीकृष्ण गोपियों के साथ विहार और नृत्य कर रहे हैं ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयतु हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥ विह० ॥९॥

यह श्रीयुत जयदेव कवि का श्रीकृष्ण के चरणों के स्मरण का तत्त्वभूत, कामदेव के विलास संयुक्त और सरस वसन्त ऋतु का वर्णन संसार में प्रसारित होय ॥ ९ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग-*
प्रकटितपटवासैर्वासयन् काननानि ।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १० ॥

अधखिली चमेली से (अधिक खिलने पर सुगन्ध उड़ जाने से कुछ खिली हुई कहा) निकलता हुआ परागरूप (पुष्पों की धूली) पटवास (सुगन्धिद्रव्यों से बना हुआ चूर्णविशेष) से वनों को सुगन्धित करता हुआ और केतकी पुष्पों की सुगन्धि का मित्र, तथा कामदेव के बाण के समान यह वायु इस वसन्त ऋतु में विरही-जनों के प्राणों को जला रहा है ॥ १० ॥

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।

---

* 'दरविगलित' इति पाठः ।

नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥११॥

आम की मञ्जरियों से बाहर निकलते हुए रस के लोभी भ्रमरों से कम्पित आम्र की मञ्जरी पर क्रीडा करने वाले कोकिल की मधुर और मनोहर वाणी से मानो सन्ताप उत्पन्न हो गया है ऐसे (वसन्त के) दिनों में, ध्यान से चित्त को एकाग्र कर क्षणमात्र चित्त में अपनी प्राणप्यारी के समागम सुख के आनन्द से विरही जन किसी किसी प्रकार से समय बिताते हैं ॥ ११ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रमस्फुरन्मनोहारिविलासलालसम् ।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ सखी समक्षं पुनराह राधिकाम् ॥ १ ॥

अनेक गोपिकाओं के आलिङ्गन के मनोहर विलास के लालची श्रीकृष्णचन्द्र को समीप से जाती हुई दूर ही से साक्षात् दिखलाती हुई कोई सखी राधिका से फिर बोली ॥ १ ॥

❀ चौथा प्रबन्ध । रामकरीरागेण रूपकताले गीयते ❀

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगः स्मितशाली ॥
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे॥ध्रु०॥२॥

हे प्रिये ! राधिके ! चन्दन से सुशोभित, श्याम शरीर वाले, पीताम्बर तथा वनमालाधारी, चञ्चल और रत्नजड़ित कुण्डलों से शोभायमान कपोल वाले, और मंन्द २ मुस्कराते हुए श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ नवीन और क्रीडा में तत्पर गोपिकाओं के समूह में विलास कर रहे हैं ॥२॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् ।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ॥ हरि० ॥३॥

हे राधे ! कोई गोपाङ्गना (अपने) ऊँचे स्तनों के भार के गौरव

से प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करके श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे ऊँचे स्वर वाले पञ्चम स्वर से गाती है ॥ ३ ॥

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥ हरि० ॥४॥

हे राधे ! कोई सुन्दर गोपललना कटाक्ष युक्त चञ्चल नेत्रों के सञ्चार से कामपीड़ित श्रीकृष्णचन्द्र के मुखारविन्द का अधिक ध्यान करती है ॥ ४ ॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
चारु[1] चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥ हरि० ॥५॥

कोई नितम्बवाली गोपरमणी ने कुछ कान में कहने के छल से श्रीकृष्ण के रोमाञ्चित कपोलों को बड़ी ही सुन्दरता से चुम्बन किया ॥५॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले ॥ हरि० ॥६॥

हे राधे ! कोई गोपी सुन्दरी यमुना जी के तटपर, सुन्दर वेतसलता के निकुञ्ज में केलि करने की इच्छा से श्रीकृष्ण के वस्त्र (पीताम्बर) को खींचने लगी ॥ ६ ॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सह नृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥ हरि० ॥७॥

हे राधे ! रासक्रीडा में श्रीकृष्ण के साथ नाचने वाली किसी गोपवधू की श्रीकृष्ण ने अधिक प्रशंसा की कि, उसने करताल देने के समय अपने कङ्कणों की ध्वनि उनकी मुरली की ध्वनि के साथ मिला दिया ॥ ७ ॥

---

१ 'कापि चुचुम्ब' इति पाठः ।

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मितचारुतरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥हरि० ८॥

हे राधे ! श्रीकृष्णचन्द्रजी किसी गोपवनिता का आलिङ्गन करते हैं, किसी गोपललना का चुम्बन करते हैं, किसी गोपरमणी के साथ रमण करते हैं, किसी को मन्द मन्द मुस्क्यान से देखते हैं और किसी के पीछे-पीछे चलते हैं ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकेलिरहस्यम् ।
वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥हरि०॥९॥

श्री जयदेव कवि वर्णित यश को देनेवाला यह भगवान् का वृन्दावन में अद्भुत क्रीडा का रहस्य भक्तजनों का कल्याण करे ॥ ९ ॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥१०॥

हे सखि (राधे) ! अनुराग (प्रेम, भक्ति, स्नेह) के वशीभूत होकर सकल संसार को आनन्द देते हुए, नीलकमलों के समान श्याम तथा कोमल अङ्गों से कामदेव के उत्साह को बढ़ाते हुए, चारों ओर अपनी इच्छापूर्वक व्रजवनिताओं से रमण किये हुए, सब अङ्गों में आलिङ्गित मूर्तिमान शृङ्गार के समान श्रीकृष्णचन्द्र वसन्त ऋतु में (व्रजवनिताओं के साथ) क्रीडा कर रहे हैं । 'इन्दीवरश्रेणीश्यामलैः' यह विशेषणपद 'श्यामो भवति शृङ्गारः सितो हासः प्रकीर्तितः' इस प्रमाण से शृङ्गाररस का स्वरूप श्याम है और श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं श्याम हैं, इसीलिए 'शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव' कहा है ॥ १० ॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलं
प्रालेयप्लवनेच्छयाऽनुसरति श्रीखण्डशैलानिलः ।

किञ्च स्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलोत्तालाः पिकानां गिरः ॥११॥

हे राधे ! इस वसन्त ऋतु में यह मलयाचल वायु, चन्दन के वृक्षों पर रहने वाले सर्पों के मुख में जाने से दुःखी मानो हिम (बरफ) में स्नान करने की इच्छा से हिमाचल की ओर जा रहा है (मलय पर्वत दक्षिण में है और हिमाचल उत्तर में है, जो दक्षिण की ओर से वहता है, वह उत्तर की ओर अवश्य ही जायगा । यहाँ उत्प्रेक्षा की जाती है कि यह वायु इधर उधर न जाकर सीधी उत्तर की ओर क्यों जा रहा है ? उत्तर में जाने का यही कारण है कि मलयाचल में रहने से वहाँ के सर्पों के विष से गरमा गया है, अतः यह वायु शांत होने के निमित्त हिमाचल की ओर जा रहा है) और कोमल २ आमों की मञ्जरियों को देखकर आनन्दित होकर कोकिल 'कुहू कुहू' ऐसी अपनी मधुर और मनोहर वाणी बोल रहे हैं ॥ ११ ॥

अब कवि भक्तों को आशीर्वाद देता है—

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवा-
मभ्यर्णे परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया ।
साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बितस्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ १२ ॥

रासक्रीड़ा के आनन्द से विभ्रम युक्त (श्रृङ्गार रस में पगे) गोपाङ्गनाओं के सम्मुख ही में प्रेम से अन्धी (विह्वल) राधिका ने 'तुम्हारा सुन्दर मुख अमृतमय है' यों कह कर गीत की प्रशंसा के बहाने से उद्भट (दृढ़ता) पूर्वक चुम्बन किया । इस प्रकार की चुम्बन में चतुराई देखकर मन्द मुस्क्यान से चित्त को हरण करने वाले श्रीकृष्ण भक्तजनों की रक्षा करे ॥ १२ ॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दकाव्ये प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः ।
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली-
मुखरशिखरे लीना दीनाऽप्युवाच रहः सखीम् ॥१॥

सकल गोपियों में बराबर प्रेम रखने वाले श्रीकृष्णचन्द्र जब वृन्दावन में रासक्रीडा करते थे उस समय राधाजी ईर्षा के वश होकर अर्थात् अन्य गोपियों की क्रीड़ा श्रीकृष्ण के साथ न सह कर (श्रीकृष्ण का तो सभी पर एकसा प्रेम है परन्तु राधा ने यह समझा कि हम पर श्रीकृष्ण का प्रेम नहीं है) जहाँ भ्रमरों की मण्डली वृक्षों के शिखर पर गूँज रही है ऐसे लताकुञ्ज में छिप गई और दुःखिता होकर भी अपनी प्रिय सखी से एकान्त में बोली ॥ १ ॥

अथ पाँचवाँ प्रबन्ध गुजरी राग रूपक ताल ।

सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनि मुखरितमोहनवंशम् ।
चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ॥
रासे हरिमिह विहितविलासं स्मरति
मनो मम कृतपरिहासम् ॥ ध्रु० ॥ २ ॥

हे सखि ! अधर अमृत से भी बढ़कर मधुर ध्वनि से परिपूरित और सकल जनों को मोहन करने वाली वंशी को वजाने वाले, (अर्थात् कामी जनों को अधरसुधा से बढ़कर कोई भी वस्तु मीठी नहीं लगती, यहाँ श्रीकृष्ण और राधिका दोनों ही कामुक हैं, अतः राधिका के कथनानुसार अधरामृत से भी बढ़ी-चढ़ी बंशी में मिठास पाई गई क्योंकि, जो जिसको अधिक प्रिय वस्तु है वही यदि उससे बढ़कर

बतावे तबही उसकी ठीक प्रशंसा जाननी चाहिये) चंचल कटाक्ष-वाले, वंशी बजने के समय चंचल मुकुट और कपोलों पर चंचल कुण्डल वाले, विलासी और मेरे सङ्ग हास्य करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र को मेरा चित्त ध्यान करता है ॥ २ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् ॥ रासे० ॥३॥

हे सखि ! चित्र सुन्दर मयूर के पक्षों से अपने केशों को कङ्कन के समान गूँथने वाले (अर्थात् केशों में मयूर का पंख गूँथे हुए हैं जैसे गोलाकार कङ्कन होता है) अतएव बहुत इन्द्र-धनुषों से चित्रित श्याम घटा के समान शरीर वाले (श्रीकृष्णचन्द्र ने जो मयूर पक्ष धारण किये हैं वह इन्द्रधनुष के तुल्य हैं और स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र श्याम मेघ के सदृश हैं) श्रीकृष्ण का मेरा चित्त ध्यान करता है यह पूर्वोक्त पद सर्वत्र अन्वित है ॥ ३ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्भितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लव मुल्लसितस्मितशोभम् ॥ रासे० ॥४॥

हे सखि ! गोपसमूहों की नितम्बिनियों के मुखचुम्बन के लोभी, और बन्धुजीव (दुपहरिया) के पुष्प के समान लाल ओष्ठरूपी पल्लव (कोमल पत्र) वाले और मन्द २ मुसक्यान से सुशोभित श्रीकृष्ण का मैं ध्यान करती हूँ ॥ ४ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ।
करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥ रासे० ॥

हे सखि ! विशाल और रोमाञ्चित तथा नवीन वसन्त कालीन पत्रों के समान भुजाओं से गोपरमणियों का आलिङ्गन करनेवाले और हाथ पैर और वक्षःस्थल में पहने गये (बहुमूल्य हीरकादि मणियों से

---

१ 'मणिमयभू' इति पाठः ।

जड़ित) आभूषणों की छिटकती हुई किरणों से अन्धकार को नाश करनेवाले श्रीकृष्ण का मैं चित्त से ध्यान करती हूँ ॥ ५ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम्[1] ।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ॥ ६ ॥

जिस श्रीकृष्ण ने श्याम मेघ की घटा के बीच चलते हुए चन्द्रमा के समान अपने मस्तक में मलयगिरि चन्दन लगाया है, और जिनका विशाल हृदय पीन (मोटे) कुचों के प्रान्त भागों को मर्दन करने में निर्दयी है, (जब श्रीकृष्णचन्द्र गोपियों के स्तनों का मर्दन करते हैं तब गोपियाँ अति विह्वल हो जाती हैं, परन्तु उनकी श्रीकृष्णचन्द्र एक भी नहीं सुनते और उनके कुचों का निर्दयता के साथ मर्दन करते ही जाते हैं) ऐसे श्रीकृष्ण को मैं हृदय से ध्यान करती हूँ ॥ ६ ॥

मणिमयकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।
पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ॥ रासे० ॥

मरकत आदि मणिसमूहों से जटित मकराकृति और मनोहर कुण्डल से सुशोभित सुन्दर कपोल (गाल) वाले और भक्तजनों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले तथा पीताम्बर धारण करनेवाले और मुनि, मनुष्य, देवता और दैत्य रूप श्रेष्ठ परिवार (कुटुम्ब) वाले श्रीकृष्णचन्द्र का मैं चित्त से ध्यान करती हूँ ॥ ७ ॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।
मामपि किमपि तरलतरङ्गमनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥ रासे० ॥

निर्मल (सुन्दर) कदम्ब वृक्ष के नीचे मिले हुए, कलियुग सम्बन्धी पापों के भय को नाश करनेवाले और कटाक्षपात से तथा अपने हृदय से हमको भी रमण करानेवाले श्रीकृष्ण का मैं चित्त से ध्यान करती हूँ ॥ ८ ॥

---

१ 'चलदिन्दु' इति पाठः ।

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति संप्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥ रासे० ॥

श्रीजयदेव कवि का बनाया हुआ, अति सुन्दर और मोहन करनेवाले मधुरिपु श्रीकृष्णचन्द्र की छवि का वर्णन करनेवाला यह काव्य श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों को स्मरण करनेवाले पुण्यात्मा भक्त जनों के लिये आनन्ददायी होय ॥ ९ ॥

गणयति गुणग्रामं भामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः ।
युवतिषु च[1]तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम् ॥ १ ॥

हे सखि ! अन्यगोपवनिताओं में अभिलाषा रखनेवाले और मेरे विना रासक्रीड़ा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र के विषय में मेरा मन अवश्य (कुटिल) होता हुआ भी श्रीकृष्ण ही की इच्छा करता है । मैं क्या करूँ और मेरा मन, श्रीकृष्ण के अपराधी होने पर भी भूलने की चेष्टा नहीं करता, किन्तु उन्हीं की गुणावली को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होता है, और जो हमको उन्होंने छोड़ दिया है इस तिरस्कार से भी मेरा मन दूर है ॥ १ ॥

अथ षष्ठः प्रबन्धः ।

मालवरागेण एकतालीताले गीयते—

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम् ।
चकितविलोकितसकलदिशारतिरभसभरेण[2] हसन्तम् ॥
सखि हे केशिमथनमुदारं रमय मया सह
मदनमनोरथभावितया सविकारम् ॥ ध्रु० ॥ २ ॥

---

१ 'वलत्तृष्णे' इति पाठः । २ 'रभसरसेन' इति पाठः ।

चुपचाप निकुञ्ज गृह में आई हुई बारम्बार इधर उधर देखनेवाली (कोई देख न ले) मेरे साथ रात्रि में एकान्त में छिपकर विहार करनेवाले, रति के उत्साह से मधुर २ हँसने वाले, केशी नाम दैत्य के वधकारी, उदार चरित्र और काम पीड़ित श्रीकृष्ण के साथ हमको मिलाय दे ॥२॥

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम् ।
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥ सखि० ॥३॥

हे सखि ! पहले समागम के तरह लज्जा के वश में होने वाली, और कोमल २ मधुर मुसुक्यान के साथ कोमल २ मधुर २ भाषिणी, मेरे साथ बड़ी चतुरता से सैकड़ों प्रशंसा के वाक्य कहनेवाले और मेरी जंघा के वस्त्र हटानेवाले श्रीकृष्ण को मुझ से मिलाय दे ॥ ३ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम् ।
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ॥ सखि० ॥४॥

हे सखि ! कोमल २ नवीन २ पत्तों की शय्या रचनेवाली और श्रीकृष्णचन्द्र को आलिङ्गन कर उनके मुख को चुम्बनकारी के साथ, तथा मेरे ही वक्षःस्थल (हृदय) के ऊपर चिरकाल तक शयन करनेवाले और हमको आलिङ्गन कर हमारे अधर को पान करनेवाले श्रीकृष्ण को मेरे साथ मिलाय दे ॥ ४ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ।
श्रमजलसिक्तकलेवरया* वरमदनमदादतिलोलम् ॥सखि०॥५॥

हे सखि ! रति के आनन्द में उत्पन्न हुए आलस्य से नेत्रों को मूँदनेवाली और रति के परिश्रम से पसीनों के बिन्दुओं से भींगे हुए शरीर वाली जो मैं हूँ मेरे साथ, रोमाञ्च युक्त और सुन्दर कपोल वाले और उत्तम कामदेव के अति आनन्द से अत्यन्त चञ्चल श्रीकृष्णचन्द्र को मिलाय दे ॥ ५ ॥

---

* 'श्रमजलसकलकलेवरया' इति पाठः ।

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।
श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ॥सखि०॥६॥

हे सखि ! रति के समय कोकिल के कण्ठ के समान अस्फुट (साफ नहीं) शब्दों का उच्चारण करनेवाली, और रति के परिश्रम से ढीली पुष्पों से अस्त-व्यस्त केश वाली मेरे साथ, कामदेव के सिद्धान्त (कोकशास्त्र) को जीतने वाले, और मेरे कठोर स्तनों पर अपने नखों से चिह्न करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र को मिलाय दे ॥ ६ ॥

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।
मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥सखि०॥७॥

हे सखि ! रति के समय पैरों में मणि के जटित पाजेब और करधनी के शब्दों के करने वाली मुझसे, केली-कलह के विस्तार को परिपूर्ण करने वाले और मेरे केशपाश को पकड़ कर चुम्बन करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र को मिलाय दे ॥ ७ ॥

रतिसुखसमयरसालसया, दरमुकुलितनयनसरोजम् ।
निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥सखि०॥८॥

हे सखि ! रति के सुख के समय आलस्ययुक्ता और बिना सामर्थ्य के मुरझाई हुई शरीर रूपी लतावाली, मेरे साथ रति के आनन्द से अधखुले नेत्र रूपी कमलों को मीचने वाले, मधुनामक दैत्य के विनाशक और उद्दीपित कामदेववाले श्रीकृष्णचन्द्र को मिलाय दे ॥८॥

श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।
सुखमुत्कण्ठितराधिकया १कथितं वितनोतु सलीलम् ॥सखि०॥९॥

श्रीजयदेव कवि से निर्मित, श्रीकृष्ण की रति का वर्णन करने वाला, उत्कण्ठिता राधिका से कहा गया यह गीत भक्तजनों के आनन्द को देवे ॥ ९ ॥

---

१ 'सुखमुत्कण्ठिगोपवधूकथितं' इति पाठः ।

अधुनाऽत्युत्कण्ठया सख्या नीयमाना सा गोपीगणावृतं
कृष्णं दृष्ट्वा परावृत्य सखीमाह—

हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिमद्वल्लवी-
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ।
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितं स्मितसुधामुग्धाननं कानने
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥१०॥

गोपीगणों से घिरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र को देख कर और वहाँ से लौट कर राधिका अपनी सखी से कहती है—

हे सखि ! हमको देखकर जिनके हाथों से मुरली और लकुटी गिर पड़ी है और टेढ़ी भौंह वाली गोपाङ्गनाओं के तिरछे कटाक्ष से देखे गये व्रजवनिताओं से घिरे हुए पसीने से भींगे कपोल (गाल) वाले और हमको देखकर अधिक लज्जायुक्त मुसकान से सुशोभित मुखवाले श्रीकृष्णचन्द्र को मैं देखती हूं और आनन्द में मग्न होती हूँ ॥१०॥

पुनः विभावयन्नाह—

दुरालोकः स्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।
अपि भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति ॥११॥

हे सखि ! यह नवीन अशोक लताओं के छोटे २ गुच्छों का खिलना और तालावों के किनारे वाले बगीचों का वायु भी हमको दुःख दे रहा है (यहाँ तालाब के रहने से ठंढापन, बगीचों से सुगन्ध और ठंढापन और सुगन्ध के आने ही से मन्दत्व स्वयं ही आ जाता है कारण, जोर से चलने से सुगन्ध उड़ जाता है अथवा वृक्षों के सघनता से भी मन्दत्व आ जाता है। वायु वर्णन में (ठंढापन)

मन्दत्व (धीमापन) और सुगन्ध होना अत्यावश्यक है इन तीनों में एक के भी न रहने से काव्य में दोष समझा जाता है) और यह जो गोवर्धन पर्वत पर आमों के वृक्षों की मंजरियाँ हैं जिनके ऊपर भौंरियाँ मनोहर गान कर रही हैं ये भी हमको सुख नहीं देती हैं ॥११॥

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजा[1]-मूलोर्ध्वहस्तस्तनम् ।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य [2]ललितां काञ्चिच्चिरं चिन्त-
यन्नन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ॥१२॥

अत्यन्त अस्तव्यस्त होकर खुली हुई केशपाश वाली, सुशोभित भौंहरूपी लतावाली, किसी [3]बहाने से भुजा, केश, आधा हाथ और स्तन (कुच) दिखलाने वाली, गोपियोंके भावोंको देखकर अभिप्रायपूर्ण मुसुकानवाली किसी सुन्दरी (राधिका) को अपने अन्तःकरण में चिरकाल तक ध्यान करने वाले अर्थात् इन सब गोपिकाओं का उपरोक्त भाव देखने से राधिका महारानी इनके स्मरण में आ गई और यह यों विचारने लगे कि, राधिका की सुन्दरता के समान इनमें सौन्दर्य्य नहीं है, मोह में मग्न और हृदय को हराने वाले तरुण श्रीकृष्णचन्द्र, हे भक्तवृन्द ! आप लोगों के क्लेश को हरैं ॥१२॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दकाव्ये द्वितीयः सर्गः ।

———

१ 'मूलार्धदृष्ट' इति 'भुजाबालार्द्ध' इति वा पाठः ।
२ 'गमिताकाङ्क्षश्चिरं' 'दयिताकाङ्क्ष' इति वा पाठः ।
३ 'कापि कुन्तलसंव्यानसंयमव्यपदेशतः ।
बाहुमूलं स्तनौ नाभिपङ्कजं दर्शयेत्स्फुटम् ॥
जृम्भते स्फोटयत्यङ्ग'मित्यादि नायिकानामनुरागचेष्टितानि ।

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

मुग्धमधुसूदनः ।

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

कंस के शत्रु श्रीकृष्णचन्द्र ने भी संसार की वासनाओं को बाँधने के लिए जञ्जीररूपी श्री राधिकाजी को अपने हृदय में रख कर सम्पूर्ण व्रज की रमणियों को छोड़ दिया ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका-
मनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः ।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी-
तटान्तकुञ्जे निषसाद[1] माधवः ॥ २ ॥

इधर उधर अनेक स्थानों में श्री राधिका जी को ढूँढ़ कर कामदेव के बाणों के घाव से अत्यन्त पीड़ित चित्त होकर और पश्चात्ताप करते हुए यमुनाजी के तट के समीप कुञ्जभवन में श्रीकृष्णचन्द्र बैठ गये ॥२॥

अथ सातवां प्रबन्ध गुर्जरीराग प्रतिमठ ताल—

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।
सापराधतया मयापि न वारिताऽतिभयेन ॥
हरिहरि हतादरतया गता सा कुपितेव । ध्रु० ॥ ३ ॥

'हरि हरि' दुःख का विषय है कि, हमको गोपिकाओं के समूह में बैठे हुए देखकर अपना निरादर समझकर वह राधिका चली गई और हम भी अपराधी होने के कारण भय से रोक न सके और आदर न होने के कारण यहाँ से वह राधिका क्रोध में आकर चली गई ॥ ३ ॥

---

१ 'विषसाद' इति पाठः ।

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण।
किं जनेन धनेन किं मम[1] जीवितेन गृहेण॥ हरिहरि०॥

वह राधा बहुत दिनों तक हमारे वियोग में पड़कर विरहाग्नि के शान्त्यर्थ क्या क्या उपाय करेगी और क्या क्या हमको भला बुरा कहेगी, अब उस राधिका के बिना जन (कुटुम्ब या अन्य गोपीजन), धन, प्राण और गृह इनसे क्या प्रयोजन ? अर्थात् ये सब व्यर्थ हैं। अर्थात् उसके बिना सब प्रिय प्राण को भी मैं कुछ नहीं समझता। कारण जब सब सुख की मूल राधिका ही हमारे पास नहीं है तब धनादिक तो उसके डाल-पात हैं (मूल के नष्ट हो जाने से डाल पात तो स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं) ॥ ४ ॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु रोषभरेण।
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताकुलं भ्रमरेण॥ हरि०॥ ५॥

ऊपर घूमते हुए भौंरे से सुन्दर शोभायुक्त रक्तकमल के नाईं अधिक क्रोध के वश टेढ़ी भौंह वाली उस राधिका के मुखारविन्द का मैं ध्यान करता हूं॥ ५॥

तामहं हृदि संगतामनिशं भृशं रमयामि।
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलयामि॥ हरि०॥६॥

यदि मैं उस हृदयाधिष्ठित राधिका के साथ बारम्बार अत्यन्त रमण करता हूं। तो अब उसको वन में ढूंढने से क्या प्रयोजन है और उसके लिये विलापादि करना भी व्यर्थ ही है॥ ६॥

हृदि सङ्गतां तां प्रत्याह—

तन्वि खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि नतेन तेऽनुनयामि॥ हरि०॥७॥

---

१ 'मम किं गृहेण सुखेन' इति पाठः।

हे सूक्ष्माङ्गि राधिके ! मैं यह अनुमान करता हूँ कि तुम्हारा चित्त ईर्षा से दुःखी हो गया है और मैं यह भी नहीं जान सकता कि तूं यहाँ से क्यों चली गई ? तुमको विनय करके मनाता हूं ॥७॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ।

किं पुरेव ससंभ्रमं परिरम्भणं न ददासि ॥ हरि० ॥ ८ ॥

हे सुन्दरी ! तूं मेरे सन्मुख केवल आती जाती दिखाई देती है, पहले की नाईं तूं मुझे अति शीघ्रता से आलिङ्गन क्यों नहीं करती। विरहियों को रात दिन उसी का ध्यान रहने से आगे, पीछे, दहिने बायें वही (प्राणप्यारी ही) सर्वत्र दीखती है ॥ ८ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ।

देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥ हरि० ॥ ९ ॥

हे सुन्दरी ! क्षमा करो अब ऐसा कभी भी न करूँगा अब दर्शन दो, क्योंकि मैं कामदेव से अत्यन्त पीड़ित हूं ॥ ९ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन[2] ।

किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन[1] ॥ हरि० ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण को प्रणाम करनेवाले और किन्दुबिल्वकुलरूपी समुद्र में चन्द्रमा के समान जयदेव कवि ने यह वर्णन किया ॥ १० ॥

इदानीं काम एव मे दुःखं प्रयच्छतीति तमेवोपालम्भेनाह—

हृदि बिसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः

कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।

मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि

प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥११॥

---

१ 'रमण' इति पाठः । २ 'प्रवणेन' इति पाठः ।

हे कामदेव! मैं राधिका का वियोगी हूं, मुझपर महादेव जी की भाँति अपने बाणों का प्रहार मत करो। बारम्बार हम पर व्यर्थ चढ़ाई क्यों कर रहे हो। मैं महादेवजी नहीं हूं। यह मेरे गले में कमलों की पाँति है किन्तु हलाहल की छबि नहीं है और यह प्रिया की विरहाग्नि की शान्ति के लिये चन्दन की धूली है, किन्तु भस्म नहीं है। श्रीमहादेवजी के चिह्न को जानकर हमको महादेवजी समझ और अपने पूर्व वैर स्मरण करके हमको क्यों व्यर्थ दुःख दे रहे हो? ॥ ११ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्वमूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम्।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेङ्खत्कटाक्षानल-
ज्वालाजर्जरितं[1] मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥१२॥

हे विना परिश्रम से समस्त संसार को जीतने वाले कामदेव! आप इन आम्रों की मञ्जरी रूप बाणों को अपने हाथों में मत चढ़ाइये, क्योंकि हे मनोभव! मूर्छित आदमी को मारने में क्या बड़ा पराक्रम है? क्योंकि उस राधिका के चञ्चल कटाक्ष रूपी अग्नि के ज्वाला से टुकड़े २ हुआ (जला हुआ) हूँ, मेरा मन अभी तक स्वस्थ नहीं हुआ है ॥ १२ ॥

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवतायामस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि॥

हे कामदेव! यदि तुम कहो कि इसमें मेरा क्या अपराध है, क्योंकि जब २ राधिका के कटाक्षादिकों का स्मरण करते हो तब २ आपको दुःख होता है, सो यह भी अपराध आपही का है, कारण

---

१ 'कटाक्षाशुगश्रेणीजर्जरितं' इति पाठः।

हे सूक्ष्माङ्गि राधिके ! मैं यह अनुमान करता हूँ कि तुम्हारा चित्त ईर्षा से दुःखी हो गया है और मैं यह भी नहीं जान सकता कि तूं यहाँ से क्यों चली गई ? तुमको विनय करके मनाता हूं ॥७॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ।

किं पुरेव ससंभ्रमं परिरम्भणं न ददासि ॥ हरि० ॥ ८ ॥

हे सुन्दरी ! तूं मेरे सम्मुख केवल आती जाती दिखाई देती है, पहले की नाई तूं मुझे अति शीघ्रता से आलिङ्गन क्यों नहीं करती। विरहियों को रात दिन उसी का ध्यान रहने से आगे, पीछे, दहिने बायें वही (प्राणप्यारी ही) सर्वत्र दीखती है ॥ ८ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ।

देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥ हरि० ॥ ९ ॥

हे सुन्दरी ! क्षमा करो अब ऐसा कभी भी न करूँगा अब दर्शन दो, क्योंकि मैं कामदेव से अत्यन्त पीड़ित हूं ॥ ९ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन[2] ।

किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन[1] ॥ हरि० ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण को प्रणाम करनेवाले और किन्दुबिल्वकुलरूपी समुद्र में चन्द्रमा के समान जयदेव कवि ने यह वर्णन किया ॥ १० ॥

इदानीं काम एव मे दुःखं प्रयच्छतीति तमेवोपालम्भेनाह—

हृदि बिसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः

कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।

मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि

प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥११॥

---

१ 'रमण' इति पाठः । २ 'प्रवणेन' इति पाठः ।

हे कामदेव ! मैं राधिका का वियोगी हूं, मुझपर महादेव जी की भाँति अपने बाणों का प्रहार मत करो। बारम्बार हम पर व्यर्थ चढ़ाई क्यों कर रहे हो। मैं महादेवजी नहीं हूं। यह मेरे गले में कमलों की पाँति है किन्तु हलाहल की छवि नहीं है और यह प्रिया की विरहाग्नि की शान्ति के लिये चन्दन की धूली है, किन्तु भस्म नहीं है। श्रीमहादेवजी के चिह्न को जानकर हमको महादेवजी समझ और अपने पूर्व वैर स्मरण करके हमको क्यों व्यर्थ दुःख दे रहे हो ? ॥ ११ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्वमूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेङ्खत्कटाक्षानल-
ज्वालाजर्जरितं[1] मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥१२॥

हे विना परिश्रम से समस्त संसार को जीतने वाले कामदेव ! आप इन आम्रों की मञ्जरी रूप बाणों को अपने हाथों में मत चढ़ाइये, क्योंकि हे मनोभव ! मूर्छित आदमी को मारने में क्या बड़ा पराक्रम है ? क्योंकि उस राधिका के चञ्चल कटाक्ष रूपी अग्नि के ज्वाला से टुकड़े २ हुआ (जला हुआ) हूँ, मेरा मन अभी तक स्वस्थ नहीं हुआ है ॥ १२ ॥

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण ।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवतायामस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥

हे कामदेव ! यदि तुम कहो कि इसमें मेरा क्या अपराध है, क्योंकि जब २ राधिका के कटाक्षादिकों का स्मरण करते हो तब २ आपको दुःख होता है, सो यह भी अपराध आपही का है, कारण

---

१ 'कटाक्षाशुगश्रेणीजर्जरितं' इति पाठः ।

आपने शस्त्र राधाजी को अर्पण कर दिये हैं, देखिये ! भ्रूलता रूपी धनुष है, चञ्चल कटाक्ष बाण है, कर्णपाली ही गुण (धनुष की डोरी) है । ये सब जगत् को जीतने वाले शस्त्र चलने फिरने वाली जय लक्ष्मी स्वरूप श्री राधिका जी में तुमने क्यों दे दिया है ? तो क्या यह आपका अपराध नहीं है ? ॥ १३ ॥

अधुना हृद्गतां राधामाह—

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम् ।
मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां बिम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तः स्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥१४॥

हे कृशाङ्गि ! तुम्हारा भौं रूपी धनुष पर स्थापित कटाक्ष रूपी बाण मेरे मर्म्मों को पीड़ा दे तो दे (क्योंकि, बाण का यह स्वभाव ही है कि वह लग जाने से दुःख देता है) और यह श्याम और कुटिल केशों के पाश भी कामदेव को जगावे, (क्योंकि जो कुटिल और जो अन्तःकरण के काले होते हैं उनकी यही दशा रहती है, कि वे दूसरों को दुःख ही दिया करते हैं) और यह राग वाला (लाल) बिम्बाधर (कुन्दुरू के सदृश अधरोष्ठ,) मोह को बढ़ावे तो बढ़ावे (क्योंकि, रागी, विषयी, मोह को बढ़ाता ही है, यह सब पूर्वोक्त ठीक ही है) परन्तु यह तुम्हारा सद्वृत्त (सुन्दर गोलाकार व अच्छे आचरण वाला) स्तनमण्डल हमारे प्राणों के साथ क्यों खेल रहा है ? यह बड़े आश्चर्य की बात है ? (क्योंकि जो अच्छे आचरण वाले हैं उनके लिये दूसरों का प्राण लेना तो दूर रहा वे किसी के भी प्राणों को कुछ भी पीड़ा देना नहीं चाहते और ये कुच हमारे प्राणों के ग्राहक क्यों बन गये हैं ? यह उत्प्रेक्षा है) ॥ १४ ॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोर्विभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्यन्दी गिरां वक्रिमा ।

सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासङ्गेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हन्त विरहव्याधिः कथं वर्धते ॥१५॥

जो सुन्दरी रमणी के सङ्ग में होते हैं, वे ही स्पर्श के सुख हमको होते हैं, वे ही चञ्चल प्रेमपूर्ण कटाक्षपात हैं, वही मुखारविन्द की सुगन्धि है, वही अमृत रस से परिपूर्ण वाणी की वक्रिमा (व्यङ्ग्योक्ति, टेढ़ापन) है और वही लालवर्ण अधरों की मधुरता है, इन रूप, रस, गन्ध और स्पर्शादि विषयों की तरफ होनेपर भी मेरा मन उस राधिका के ध्यान में लगा है तो भी बड़े खेद की बात है कि यह विरह की वेदना कैसे हो रही है, क्योंकि ध्यान युक्त योगियों को किसी प्रकार की वेदना नहीं होती ॥ १५ ॥

तिर्यक्कण्ठविलोलमालितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्-
गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः ।
संमुग्धे मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु
स्पन्दं कन्दलिताश्चिरं ददतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ १६ ॥

बजती हुई वंशी के गान के पदों में चित्त देने के कारण अन्य गोपियों से नहीं देखी गई, और राधिका के सुन्दर मुख रूपी चन्द्रमा में अप्रकट भाव से धीरे धीरे चल कर बढ़ी हुई, ग्रीवा (गरदन) को तिरछी करने से चञ्चल मुकुट और कुण्डल वाले श्रीकृष्णचन्द्र की कटाक्षों की लहरी (पांती) आप भक्तजनों को कल्याणकारिणी हो ॥ १६ ॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दकाव्ये तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

---

१ 'दीप्तिस्थान' इति पाठः । २ 'सुधासारे' इति पाठः ।

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी ॥ १ ॥

यमुना जी के तीर पर वेतों के कुञ्ज में उदासीन बैठे हुए और प्रेम की अधिकता से उद्विग्न चित्त वाले श्रीकृष्णचन्द्र से राधिका की सखी बोली ॥ १ ॥

उक्तश्लोकार्थं गीतेनाह—

अथ अष्टमप्रबन्धः कर्णाटकरागेण एकतालीतालेन गीयते—

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ॥
माधव मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ।
सा विरहे तव दीना ॥ ध्रु० ॥ २ ॥

हे माधव ! विरह से अति दीन वह राधिका कामबाणों के भय से मानो तुम्हारे ही में लीन हो गई । अपने को श्रीकृष्ण के हृदय में बैठी हुई जान कर "अब हमको कामदेव के बाणों से कुछ भी भय नहीं है, क्योंकि मैं श्रीकृष्ण के हृदय में निवास करती हूँ" ऐसी २ भावना से वह रहती है । और चन्दन की निन्दा करती है । चन्द्रमा की शीतल किरणों को अधीर होकर अत्यन्त कष्टदायी समझती है और मलय पर्वत (जिसमें चन्दन के वृक्ष होते हैं) के सुगन्धित वायु को सर्पों का निवास स्थान होने से उनके विषाग्निरूप श्वास के मिलने से उस वायु को विष के समान मानती है । यद्यपि ये सब वस्तु शीतल हैं तो भी आपके विरह से उनको दुःख देती हैं ॥ २ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनीदलजालम् ॥३॥

निरन्तर लगने वाले कामदेव के बाणों के भय से मानों उनके हृदय स्थित आपकी रक्षा के लिये निज हृदयरूपी मर्म स्थान में जल से आर्द्र कर २ के कमल के पत्तों का कवच (बखतर) बनाती है (जैसे योद्धा संग्राम में बाणों के भय से लोहे आदि का कवच धारण करता है वैसे ही कामदेव के बाणों के भय से हृदय स्थित श्रीकृष्ण की रक्षा के लिये कमल के पत्तों का कवच बनाना युक्त ही है, कारण कामदेव भी कुसुमशर है अर्थात् कामजनित दाह को हृदय पर कमल के पत्ते रख कर शान्त करती है) ॥ ३ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् । व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥ सा वि० ॥ ४ ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! वह राधिका पुष्पों की शय्या बनाकर उस पर सोती है, क्योंकि, आप ही के आलिङ्गन सुख के लिये नाना प्रकार की विलास कलाओं से सुन्दर कामदेव के बाणों की शय्या बनाकर मानो बड़ा भारी व्रत कर रही है, ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त योगी भी बाणों की शय्या पर सोता है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि, विरहाग्नि की शान्ति के लिये वह पुष्पों की शय्या पर सोती है, परन्तु वह भी आपके विना उसको बाणों के समान लगती है ॥ ४ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् । विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम् ॥ सा वि० ॥ ५ ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! वह राधिका बहते हुए अश्रु जल से परिपूर्ण सुन्दर मुखारविन्द को, अति कठोर राहु के दन्तों से दलित चन्द्रमा के मुख से बहती हुई अमृतधारा के समान धारण करती है अर्थात् आपके वियोग से आंसुओं को बहाती रहती है ॥ ५ ॥

विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम् । प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥ सा वि० ॥ ६ ॥

हे माधव ! वह राधा कामदेव के समान रूपधारी आपका चित्र कस्तूरी से एकान्त में बैठकर लिखती है और उसके नीचे मकर का आकार बनाकर आपके हाथ में आम्र की मञ्जरी देती है और प्रणाम किया करती है (जब आपका चित्र लिख चुकती है तब अति व्याकुलता में जो मकर ऊपर लिखना चाहिये था वही नीचे लिख देती है) ॥६॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम् ॥ सा० ॥७॥

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! बड़े कष्ट से प्राप्त होने योग्य आपका ध्यान करके अपने सम्मुख एक आपकी प्रतिमा कल्पना कर उसके आगे विलाप करती है, हँसती है, विषाद करती है, रोती है और वहाँ से हट जाती है कि अब आलिङ्गन होगा, अतः कुछ क्षण के लिए दुःख को छोड़ देती है ॥ ७ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ।सावि०॥८॥

फिर इधर उधर घूमती फिरती बार बार यह कहती है कि, हे प्राणवल्लभ ! मैं आपके चरणों में गिरती हूँ कि आपके विमुख होने से सुधानिधि (अमृत की खानि, चन्द्रमा) भी मेरे शरीरको जला रहा है ॥८

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ।
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥सा वि०॥९॥

श्री जयदेव कवि के काव्य का यदि मन से अधिक आनन्द लेना हो तो श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल श्री राधिका जी की प्रिय सखी के वचनों को पढ़ो ॥ ९ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वाला कलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडितम् ॥ १० ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आपके विरह से राधिका को गृह वन के समान, प्रिय सखियाँ जाल के समान, श्वास की गर्मी भी दावानल के समान और वह राधिका भी हरिणी के समान जान पड़ती है और अति खेद की बात है कि, कामदेव भी बाघ के तरह उस राधिका रूपी मृगी के लिये यमराज हो रहा है अर्थात् अब मैं कहाँ तक कहूँ आपके विना राधिका अब मरा चाहती है ॥ १० ॥

अथ नवमः प्रबन्धो देशाख्यरागेण एकतालीतालेन गीयते—

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् ।
सा मनुते कृशतनुरिव भारम् ॥ १ ॥
राधिका विरहे तव केशव ॥ ध्रु० ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आपके वियोग से क्षीण शरीर वाली वह राधिका दोनों स्तनों पर पड़े बहुमूल्य हार को भी भार (बोझ) के समान मानती है । अर्थात् आपके विना वह हीरों के हार का भी तिरस्कार करती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

हे केशव ! वह राधिका आपके विरह से व्यग्र होकर अति शीतल और चिकना शरीर में लगा मलयगिरि चन्दन को भी शङ्का के साथ विष के समान देखती है ॥ २ ॥

---

१ 'तापो निःश्वसितेन' इति पाठः ।

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

हे केशव ! वह राधिका बड़े लम्बे साँसों को कामाग्नि के समान धारण करती है अर्थात् आपके वियोग से गरम २ और बड़े २ लम्बे२ साँस लिया करती है ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।
नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

हे केशव ! वह राधिका आँसुओं से परिपूर्ण बिना डंटी के कमलों के सदृश अपने नेत्रों को सब दिशाओं में फेंकती है अर्थात् आपके दर्शन की इच्छा से आँसू भरे नेत्रों से चारों ओर ताकती है कि श्रीकृष्णचन्द्र आये तो नहीं ॥ ४ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ।
बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

हे केशव ! वह राधिका सायंकाल अपनी हथेली पर रखे हुए अपने कपोलों को निश्चल बालचन्द्रमा के समान नहीं छोड़ती अर्थात् शाम को अपने हथेली पर अपने गालों को रखकर रात बिताने की चिन्ता में डूबी रहती है ॥ ५ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ।
कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

हे केशव ! वह राधिका आँख के सामने पड़े नवीन-नवीन कोमल पत्तों की शय्या में अग्नि का सन्देह करती है (पत्तों को ताम्रवर्ण देख कर उसको यह सन्देह हो जाता है कि, इस शय्या पर अङ्गारा तो नहीं बिछा है) ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ।
विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ राधिका० ॥ ७ ॥

हे केशव ! वह राधिका आपके विरह से मरण अवस्था में पड़ी हुई के समान यथेष्ट, "हरि हरि" इस मन्त्र का जप करती है जैसे कोई मरण समय में "हरि हरि" जपता है कि हमको उस जन्म में इस मन्त्र के जपने से हरि अवश्य मिलेंगे, इसी प्रकार राधिका भी श्रीकृष्ण के नाम को जपा करती है कि हमको श्रीकृष्णचन्द्र इस जन्म में न मिलेंगे तो उस जन्म में तो अवश्य ही मिलेंगे ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ।
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र के पदों में समर्पित यह श्रीजयदेव कवि का कहा गीत आप लोगों को सुख देवे ॥ ८ ॥

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्छत्यपि ।
एतावत्यतनुज्वरे[1] वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात्
स्वर्वैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः[2] ॥ ९ ॥

(स्वर्ग के वैद्य) हे अश्विनीकुमार के तुल्य वैद्यराज श्रीकृष्णचन्द्र ! उस राधिका को रोमाञ्च खड़े होते हैं, वह सी २ करती है, विलाप करती है, शरीर कपाती है, ग्लानि करती है, ध्यान करती है, भ्रमित होती है, नेत्रों को बन्द कर लेती है, (भूमि में) गिरती है, उठती है, और मूर्छित भी हो जाती है, इस प्रकार का बढ़ा चढ़ा उसको कामज्वर है सो वह आपके रस (शृङ्गार रस) देने से क्या नहीं जीवेगी ? अर्थात् आपके मिलने से अवश्य ही जीवेगी, अतः हे

---

१ 'एतादृश्यतनु' इति पाठः । २ 'स्यन्तकः' इति पाठः ।

श्रीकृष्णचन्द्रजी! आप प्रसन्न होइये तो वह मृत्यु से बच जायगी और यदि आप प्रसन्न न होइयेगा तो उसकी हस्त चेष्टा भी बन्द हो जायगी अर्थात् वह इस समय बोल नहीं सकती, परन्तु इशारे से काम लेती है, वह भी बन्द हो जायगा। यहाँ रस शब्द श्लिष्ट (दो अर्थ में) है, जैसे सन्निपात ज्वर में सद्वैद्य के 'रस' (चन्द्रोदयादि रस) प्रदान करने से रोगी बच सकता है, उसी प्रकार कामज सन्निपात ज्वर के लक्षण से दूषित राधिका भी श्रीकृष्णरूपी सद्वैद्य के रस (शृङ्गार) प्रदान से बच सकती है और कामज्वर की यही औषधि भी है ॥ ९ ॥

पुनरुपेन्द्रवज्रावृत्तेनाह—

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम् ।
विमुक्तबाधां[1] कुरुषे न राधामुपेन्द्र वज्रादपि दारुणोऽसि ॥१०॥

हे देवताओं के वैद्य (अश्वनीकुमार) के सदृश मनोहर! केवल आपके आलिङ्गनरूपी अमृत ही से साध्य (चिकित्सा के योग्य) उस कामपीड़ित राधिका को यदि रोग रहित नहीं करियेगा तो हे उपेन्द्र! (वामनस्वरूप) आप वज्र से भी अति कठोर हो ॥ १० ॥

एवंविधापि राधा त्वच्चिन्तनेनैव जीवतीत्याह—

कन्दर्पज्वरसञ्ज्वरा[2]कुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यती ।
किन्तु[3] क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेवसेकं प्रियं ध्यायन्ती
रहसि स्थिता कथमसौ क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥ ११ ॥

कामज्वर के ज्वर से व्याकुल शरीर वाली राधिका का मन चन्दन, चन्द्रमा और कमलिनी इनका ध्यान करते ही बहुत देर तक दुःखित हो जाता है, यह अति ही आश्चर्य है। किन्तु शीतल शरीर और असाधारण प्रेमी आपही का ध्यान करती हुई एकान्त में बैठी

---

१ 'निवृत्तबाधाम्' इति पाठः। २ 'ज्वरातुरतनो' इति पाठः।
३ 'किन्तूत्क्रान्तिवशेन', 'किन्तु क्लान्तिवशेन' इति वा पाठः।

क्षीण शरीर वाली (दुबली पतली) वह राधिका केवल सहनशीलता के वश में होकर किसी प्रकार से जीती है अर्थात् आपही के स्मरण से वह प्राणों को बचाए हुए हैं ॥ ११ ॥

पुनरपि उद्दीपनविभावेन विरहोद्रेकं पुष्पिताग्रावृत्तेनाह—

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! जो राधिका पहिले (आपके दर्शन में हानि के भय से) नेत्रों की पलक गिराने में भी दुःखी क्षणभर भी आपका विरह नहीं सह सकती थी, वही राधिका फूली हुई आम की मञ्जरियों को देखकर आपके चिर विरह में कैसे जी सकती है अर्थात् इस वसन्त ऋतु को देखकर आपके वियोग में उसका जीना दुर्घट है ॥ १२ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्वल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।
दर्पेणैव तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनो तु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥१३॥

वर्षा से व्याकुल गोकुल की रक्षा के अनुराग से गोवर्द्धन नामक पर्वत को उखाड़ कर धारण करने वाले और आनन्द पूर्वक गोपाङ्गनाओं से चिरकाल तक चुम्बित (आज भी अद्भुत कार्य करने वालों के हाथ चूमें जाते हैं) अतएव अभिमान के वश में होकर गोपियों से रखे गये लाल ओठ की लालिमा से बाहु पर लालवर्ण के तिलक की शोभा वाले (गोपियों ने जो अपने लाल ओठोंको बाहु पर रखा वही लाल वर्ण मानों उस बाहुपर सिन्दूर का तिलक बन गया) गोपवेषधारी कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बाहु आप लोगों की रक्षा करें ॥१३॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दकाव्ये चतुर्थं सर्गः ॥ ४ ॥

---

१ 'वनवशात्' इति पाठः । २ 'द्वल्लववल्लभाभिरधिका' इति पाठः ।

पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

अहमिह निवसामि याहि राधामनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।
इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधम् ॥१॥

तब श्रीकृष्णचन्द्र जीने यों कहा कि, मेरे कहने से तुम जाकर राधिकाजी को समझाके यहाँ बुला लाओ और जब तक वह नहीं आवेंगी तब तक मैं इसी निकुञ्ज गृह में रहूँगा। इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र की भेजी हुई सखी राधिका के पास स्वयं आकर श्रीकृष्णचन्द्र का संदेशा राधिका से फिर बोली ॥ १ ॥

अथ दशमप्रबन्धो वराडीरागेण रूपकताले गीयते—

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥ १ ॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रु० ॥

-हे सखि ! कामदेव को सहायक बनाके मलयानिल (दक्षिण की वायु) के चलने पर और विरहियों के हृदय को विदारण करने के लिये पुष्पों की कलियों के खिलने पर हे राधे ! तुम्हारे वियोग से वनमाली (श्रीकृष्णचन्द्रजी) अत्यन्त दुःखी होते हैं ॥ १ ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति पतति ।
मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति ॥ तव वि० ॥ २ ॥

हे राधे ! जब चन्द्रमा अपनी किरणों से जलाता है तब श्रीकृष्णचन्द्रजी मरण पीड़ा की तरह दुःखी हो जाते हैं और जब तुम्हारे विरह में कामदेव के वाण उन पर गिरते हैं तब वे अत्यन्त बिकल होकर विलाप करते हैं ॥ २ ॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपिदधाति ।
मनसि कलितविरहे निशि निशि रुजमुपयाति ॥तव वि०॥३॥

हे राधे ! जिस समय भौंरों का झुण्ड गूँजता है उस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने कानों को मूँद लेते हैं (जिससे उनका शब्द सुनाई न दे) और तुम्हारे विरह के स्मरण हो आने पर उनको प्रति रात में बड़ा कष्ट होता है ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितमपि धाम ।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम ॥तव वि०॥४॥

हे राधे ! तुम्हारे विरह में श्रीकृष्णचन्द्रजी अति सघन और अति विशाल वन में निवास करते हैं, सुन्दर सुन्दर अपने गृहों को छोड़ देते हैं, भूमि ही की शय्यापर लोटते रहते हैं और तुम्हारा नाम ले लेकर बारम्बार विलाप करते रहते हैं ॥ ४ ॥

रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।
हसति मनुजनिचये निजविरहमपलपति नेति ॥तव वि०॥५॥

हे राधे ! कोकिलाओं का समूह जब 'कुहू कुहू' करके बोलता है तब उसे तुम्हारा शब्द जानकर उसके पीछे चारो ओर घूमते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रजी की यह दशा देखकर जब मनुष्यगण हँसते हैं तब अपने विरह को श्रीकृष्णचन्द्रजी नकारते (अपलाप करते) हैं ॥ ५ ॥

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।
तव रतिसुखविभवे बहुगणयति सुगुणमतीव ॥तव वि०॥६॥

हे राधे ! सुन्दर बोलवाले पक्षियों के मधुर शब्द सुनने पर श्रीकृष्णचन्द्र को तुम्हारा भणित (रति के समय के अव्यक्त शब्द) का स्मरण हो आता है। और जब तुम्हारी सुरति के आनन्द अनुभव होता है तब 'इस आनन्द से बढ़कर दूसरे में आनन्द नहीं है' ऐसा कहकर इस आनन्द को बारम्बार गिनते हैं (बखानते हैं) ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।
तमपि सरसं परयुवतिषु न रतिमुपैति ॥ तव वि० ॥ ७ ॥

हे राधे ! जब कोई मनुष्य, कल्याणदायक तुम्हारे नाम वाले (राध = वैशाख) मास का नाम लेता है तब उसको श्रीकृष्णचन्द्र बड़े प्रीतिपूर्वक सुनते हैं और उसी नाम को अत्यन्त प्रेमपूर्वक जपते भी हैं, अतएव उनको दूसरी व्रजवनिताओं में प्रीति नहीं होती ॥७॥

भणति कविजयदेव इति विरहविलसितेन ।
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन ॥ तव वि० ॥ ८ ॥

जयदेव कवि के इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगरूपी विलास का वर्णन करने से अत्यन्त आनन्दयुक्त जयदेव कवि के चित्त में पुण्य के प्रभाव से श्रीकृष्णचन्द्र जी प्रकट होंय ॥ ८ ॥

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलीं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ ९ ॥

सखी राधिका से फिर कहती है कि, हे राधे ! जिस निकुञ्ज में पहले तुम्हारे साथ श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कामदेव की सिद्धि (चुम्बन रतिक्रीडा आलिङ्गनादि) प्राप्त कीथी उसी कामदेव के महातीर्थ निकुञ्ज में बैठ कर श्रीकृष्णचन्द्र जी रात दिन तुम्हारा ही ध्यान और तुम्हारा ही नाम के अक्षरों की पंक्ति का जप करते हुए फिर आपके कनक कलश तुल्य कुचों के निर्भर (बारबार) आलिङ्गनरूपी अमृत की इच्छा करते हैं ! (जैसे ऋषि ईश्वरादि का ध्यान करता हुआ और उसीके नाम का जप कर सिद्धि [अणिमादि] प्राप्त कर फिर अमृत [मोक्ष] की इच्छा करता है) ॥ ९ ॥

अथ एकादशः प्रबन्धः केदाररागेण एकतालीताले गीयते—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥१॥
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।
गोपीपीनपयोधर-मर्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ ध्रु० ॥

हे राधे! गोपियों के पीन (मोटे मोटे) कुचों के मर्दन करने में चञ्चल दोनों हाथ वाले वनमाली श्रीकृष्णचन्द्र जी जहाँ मन्द मन्द वायु बह रहा है ऐसे यमुना के किनारे वन में बैठे हैं। अतः हे नितम्बिनि! रति के तत्त्वस्वरूप अभिसार (सङ्केतस्थल) में बैठे कामदेव के समान मनोहर वेषधारी ऐसे जो तुम्हारे हृदय के स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं उनके पास चलने में देर मत करो ॥ १ ॥

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदु वेणुम् ।
बहुमनुतेऽतनु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥ धीर० ॥२॥

हे राधे! तुम्हारे नाम के सङ्केत से (तुम्हारा नाम ले ले कर) मधुर स्वर से श्रीकृष्णचन्द्र जी मुरली को बजा रहे हैं और वायु से उड़ाई तथा तुम्हारे अङ्गों से स्पर्श करने वाली धूली के कणों को भी बहुत समझते हैं ॥ २ ॥

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं स चकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥ धीर० ॥३॥

हे राधे! जब पक्षी उड़ते हैं तब उनकी आहट से और पत्तों की खड़खड़ाहट से तुम्हारे आगमन की आशंका करके चकित नयन (चौकन्ने) होकर तुम्हारे आगमन के मार्ग को देखने लगते हैं और तुम्हें सोने के लिये शय्या की तैयारी करते हैं ॥ ३ ॥

---

१ 'धरपरिसरमर्दनकर' 'मर्दनचञ्चत्कर' इति पाठभेदः ।
२ 'मनुते ननु ते' इति पाठः । ३ 'पतत्रिणि विचलितपत्र' इति पाठः ।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिसुलोलम् ।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम् ॥धीर०॥४॥

हे राधे ! बहुत बजने वाले अतएव अधीर (मूर्ख) और केलि करने के समय चञ्चल ये नूपुर (पाजेब) शत्रुके समान हैं इनको यहीं पर छोड़ दो और नील वस्त्रों को धारण कर घोर अन्धकार से युक्त कुञ्ज में चलो (यह कृष्णाभिसारिका का लक्षण है) ॥ ४ ॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥ धीर० ॥५॥

हे पीत वर्णवाली राधे ! मेघों में बकपंक्ति के समान हीरा के हारों से सुशोभित और पुण्य से लब्ध श्रीकृष्णचन्द्र के छातीपर विपरीत[1] रति में बिजली की सी शोभा को प्राप्त करो ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ।
किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिदानम्[2] ॥धीर०॥६॥

हे राधे कोमल पत्तों की शय्या पर शयन करने वाले कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र के ऊपर वस्त्र और करधनी रहित तथा निधि खजाना के समान आनन्द का आदि कारण अपनी नङ्गी जंघा को मिलाओ अर्थात् अपनी नङ्गी जंघा को श्रीकृष्णचन्द्र की जंघा से मिलाकर आनन्द का अनुभव करो ॥ ६ ॥

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥धीर०॥७॥

---

१ जिसमें पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर रहती हैं उसको विपरीत रति कहते हैं । एक कवि ने इसका यों वर्णन किया है—

निवृत्ता नूपुरारावे श्रूयते मेखलाध्वनिः ।
नूनं कान्ते परिश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ॥ इति ॥

२ 'निधानम्' इति पाठः ।

हे राधे ! श्रीकृष्ण जी अभिमान में हैं। (शीघ्रता न करने से न जाने कुछ रुष्ट हो जाँय) और इस समय रात्रि है सो भी बीती जा रही है (फिर सूर्योदय होने से अभिसारिका का समय भी नहीं रहेगा) मेरे कहे हुए वचन को शीघ्रता से करो और श्रीकृष्ण के मनोरथ को शीघ्र ही सम्पादन करो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥धीर० ॥ ८ ॥

हे भगवद्भक्तजनो ! श्रीकृष्णसेवा और अतिसुन्दरता से इस पूर्वोक्त गीत के रचयिता पर अति दयाकारी प्रसन्न चित्त और पुण्य पुरुषों के लिये सुन्दर रूपधारी श्रीकृष्णजी को प्रणाम करो ॥ ८ ॥

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः[1] पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥ ९ ॥

हे मनोरमे राधे, कामदेव की पीड़ा से पीड़ित तुम्हारे प्यारे श्रीकृष्णजी बारम्बार श्वासों को लेते हैं, बारम्बार दशों दिशाओं की ओर निहारते हैं, बारम्बार कुञ्ज के बाहर आकर फिर बड़बड़ाते हुए भीतर जाते हैं, बारम्बार दुःखित होते हैं और बारम्बार शय्या की रचना करते हैं, और बड़ी व्याकुलता से बारम्बार फिर इधर उधर देखते हैं ॥ ९ ॥

त्वद्वाक्येन[2] समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तङ्गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमःसान्द्रताम् ।

---

१ 'श्वासापुरो' इति पाठः । २ 'त्वद्वाम्येन' 'त्वद्वाष्पेण' इति च पाठौ ।

कोकानां करुणस्वनेन[1] सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥ २ ॥

हे मुग्धे राधिके ! ईर्षा और मान से भरे हुए तुम्हारे वचनों के साथ सूर्य भी अस्त हो गया (अर्थात् मेरे वचनोंका उत्तर कुछ भी नहीं दिया और सूर्य भी अस्त हो चुके) श्रीकृष्णजी के मनोरथों के साथ साथ अन्धकार भी गाढ़ा हो गया, (अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र को यों ही विचारते विचारते रात्रि बीती जा रही है कि 'मेरी प्राणप्यारी आती ही होगी' इत्यादि) चकवा चकई के रोदन के समान यह मेरी लम्बी प्रार्थना भी खतम हो गई (अर्थात् चकवा चकई सारी रात विलाप करते हैं तो भी उनका मिलाप नहीं होता)। इसी प्रकार मैं इतना कह रही हूँ तो भी तुम्हारा मान नहीं छूटता अथवा जैसे चकवा चकई मिलने के लिये विलाप करते हैं उसी प्रकार मैं भी तुम दोनों के मिलाप कराने के निमित्त इतना कह रही हूं। अतएव हे राधे ! सूर्य के अस्त होने से रात्रि का अन्धकार बढ़ जाने से यही समय अभिसार [छिपकर प्रियतम के समीप जाने] का अत्युत्तम है अब विलम्ब न करके शीघ्र चलो ॥ २ ॥

यतः अभिसारे रसाधिक्यं भवतीत्याह—

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्त-
जात् प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु-
प्रीतयोः। अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः संभाष-
णैर्जानतोर्दम्पत्योर्निशि[2] को न को न तमसि व्रीडा-
विमिश्रो रसः ॥ ३ ॥

हे राधे ! सङ्केत स्थान में दूसरी स्त्री के लिये दूसरा पुरुष और

---

१ 'स्वरेण' इति पाठः। २ 'दम्पत्योरिह' इति पाठः।

दूसरे पुरुष के लिये दूसरी स्त्री के मिलने पर आपस में अन्धकार के कारण दोनों पहिचान नहीं सकते, फिर बातचीत से परस्पर का ज्ञान होता है कि यह अमुक पुरुष है और यह अमुक स्त्री है। इतना हो जाने पर आलिङ्गन, उसके पीछे चुम्बन, फिर कुचस्थानादि में नखक्षतादि, पीछे कामोद्दीपन इसके अनन्तर आनन्ददायिनी रति का आरम्भ एवं दोनों ही प्रिया और प्रियतमा के लज्जा से संयुक्त कौन कौन रस नहीं प्राप्त होते अर्थात् अति आनन्द में मग्न हो जाने पर सभी रस प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

इदानीं त्वज्ञाभात्कृष्णः कृतार्थो भवत्वित्याह—

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशं[1] तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ।
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥ ४ ॥

हे राधे ! अन्धियारे मार्ग में भय से युक्त चकित (चौकन्नी) दृष्टि से देखती हुई वृक्षों के नीचे बार बार ठहर ठहर कर पैर को रखती हुई कामदेव से व्याप्त सर्वाङ्गों से किसी प्रकार [अति कठिनाई से] चल कर उस सङ्केत स्थान में प्राप्त हुई तुमको देखकर हे सुमुखि ! वह सौभाग्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी कृतकृत्य हो जायँ ॥ ४ ॥

कविः सर्गान्ते भक्तजनमाशिषाभिनन्दति—

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः[2] ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं[3]
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ५ ॥

---

१ 'दृशौ' इति पाठः । २ 'भारावतारान्तकः' इति पाठः ।
३ 'तोषप्रदोषोदयः' इत्यपि पाठः ।

राधिका के सुन्दरमुखरूपी कमल के भ्रमर (जैसे कमलरस को भौंरा पान करता है वैसे ही राधिका के मुखरूपी कमल में अधरामृतरूपी रस को पीनेवाले) तीनों लोकों का मुकुटस्वरूप, वृन्दावन के वेष रचनार्थ नीलम मणि के समान, पृथ्वी के भार (बोझ) उतारने में समर्थ, स्वच्छन्दता से (निर्भय होकर) व्रज की रमणियों के मन को प्रसन्न करने के वास्ते प्रदोष (सन्ध्या) स्वरूप (स्त्रियाँ प्रायः सन्ध्या वा सन्ध्या के अन्तरही प्रसन्न रहती हैं, कारण वही समय कामोद्दीपन तथा उनके विनोद का है) और कंस को विनाश करने में धूमकेतु (पुच्छलतारा) के समान देवकी के नन्दन श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीजयदेव कवि विरचिते गीतगोविन्दे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ॥ १ ॥

जाने में असमर्थ और बहुत दिनों से अनुरागिणी राधिका को लताभवन में देखकर कामदेव से पीड़ित श्रीकृष्ण के पास जाकर राधिका का चरित्र कहने लगी ॥ १ ॥

द्वादशः प्रबन्धो गुणकरीरागेण[1] रूपकताले गीयते ।

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् ।
त्वदधर[2]मधुरमधूनि पिबन्तम् ॥ १ ॥
नाथ हरे जय नाथ हरे, सीदति राधाऽवासगृहे ॥ ध्रु० ॥

---

१ 'गोण्डकरी' इति पाठः । २ 'तदधर' इति पाठः ।

हे हरे! हे नाथ! अपने अधररूपी मधुर मधु को पीते हुए आपको, निकुञ्ज (संकेतस्थल) में बैठीं हुई राधिका चारो ओर देखती रहती हैं, और हे नाथ! आपकी जय हो! वह राधिका वासगृह में आपके लिये दुःखी हो रही है ॥ १ ॥

नन्वेवं चेत्तर्हि किमिति नागतेत्यत आह—

त्वदभिसरणरभसेन चलन्ती[1] ।
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ॥ नाथ० ॥ २ ॥

हे नाथ! जब उस राधिका ने आपके पास आने में उत्साह किया तब ही कई एक पैर चलकर गिर पड़ी अर्थात् वह आपके विरह से इतनी दुर्बल होगई है कि यहाँ तक आ ही नहीं सकती ॥ २ ॥

अत्यन्त कष्ट का विषय है कि जब उसकी यह दशा है तो जीती कैसे है—इसका उत्तर सखी देती है—

विहितविशदबिसकिसलयवलया ।
जीवति परमिह तव रतिकलया ॥ नाथ० ॥ ३ ॥

कमल के अङ्कुर और पत्तों के कङ्कण धारण करती है और केवल आपके सङ्ग रति की लालसा ही से इस समय तक वह राधिका जीवित है और कोई भी दूसरा सहारा उसको नहीं है ॥ ३ ॥

मुहुरवलोकितमण्डनलीला[2] ।
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथ० ॥ ४ ॥

हे नाथ! वह राधिका बारम्बार अपने आभूषणों के विलास को देखती है, आपके समान अपने वेष की रचना करके यों कहती हैं कि श्रीकृष्णचन्द्रजी मैं ही हूं इस प्रकार आपही की भावना करती हुई जीवित है ॥ ४ ॥

---

१ 'चलन्ती' इति पाठः । २ 'मण्डललीला' इति पाठः ।

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ नाथ० ॥ ५ ॥

हे नाथ ! मेरे मन को हरण करने वाले श्री कृष्णचन्द्रजी इस सङ्केत स्थल में क्यों नहीं आते यों बार २ सखी से कहती रहती है ॥५॥

तथा च—

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥ नाथ० ॥ ६ ॥

मेघ के सदृश थोड़े अन्धकार को कृष्ण समझकर आलिङ्गन और चुम्बन करती है (अर्थात् स्निग्ध नीले रङ्ग के अन्धकार को कृष्ण समझ काम के वशीभूत हो उसी का चुम्बन करती है) ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ।
विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ नाथ० ॥ ७ ॥

जब आपके आने में विलम्ब होता है तब [१]वासकसज्जा वह राधिका निर्लज्जा होकर विलाप करती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथ० ॥ ८ ॥

यह श्री जयदेव कवि का बनाया हुआ गीत भगवत् प्रेमियों को आनन्द देवें ॥ ८ ॥

इदानीं तस्यास्त्वदेकपरत्वमाह—

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ।

---

१ जो पति का आगमन सुनकर अपने को तथा वासगृह को सजाती है और न आने से दुःखी होती है उसको वासकसज्जा नायिका कहते हैं ।

तव कितव विधायामन्दकन्दर्पचिन्तां
रसजलनिधिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥१॥

हे धूर्त श्रीकृष्णचन्द्रजी ! वह राधिका अत्यन्त कामचिन्ता को अपने हृदय में धारण करके आपके ध्यान में मग्न हो जाती है। और उसी ध्यान में उसको यह जान पड़ता है कि हमारे अङ्गों से श्रीकृष्ण-चन्द्रजी का स्पर्श हुआ, अतः हर्ष से उसका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित हो जाता है। फिर उसको उसी ध्यान में यह ज्ञात होता है कि श्रीकृष्णजी हमारे अधर का चुम्बन और नखक्षतादि कर रहे हैं, ऐसा जानकर "सी सी" करने लगती है और उसके अन्तःकरणों में जडता समा जाने से अति विह्वल होकर वह अति भय से "नहीं नहीं ऐसा मत करिये" इत्यादि बातों को कहती हुई आपके शृङ्गाररसरूपी समुद्र में डूब जाती है ॥ १ ॥

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायति ।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ॥२॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! वह सुन्दरी राधिका पत्तों की खड़खड़ाहट सुनकर भी आपको आया समझ हाथ पावों में आभूषण धारण करती और पुष्पादिकों से शय्या की रचना करती है, और बहुत देर तक सोचती है, इस प्रकार सैकड़ों सङ्कल्प करती है (श्रीकृष्णचन्द्रजी जब आवेंगे तब मैं यों कहूँगी यों करूँगी और मानकर बैठ जाऊँगी, यदि वे मनावेंगे तो मैं बड़ी कठिनाइयों से मानूँगी, इत्यादि) बातें सोचती हुई आपके ही विषय में मग्न है, तथापि आपके बिना रात नहीं बितावेगी अर्थात् यदि आप उससे इस समय नहीं मिलियेगा तो सूर्योदय तक उसके प्राणपखेरू उड़ जायँगे ॥ २ ॥

सर्गान्त में कवि आशीर्वाद देता है।

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भाण्डीरभूमीरुहि
आतर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम्।
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ॥३॥

हे भाई बटोही! भाण्डीर वट की भूमि में कृष्णसर्प का निवास-स्थान वा भोगविलास करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के घर पर ही क्यों विश्राम करते हो? यहाँ से दिखायी देनेवाले और आनन्दप्रद नन्दजी के घर पर क्यों नहीं चले जाते? इस प्रकार के राधिकाजीके वाक्य उस पथिक के मुख से सुनकर उन वाक्यों को नन्दजी के सम्मुख छिपानेवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी से उस पथिक की प्रशंसा में कही हुई वाणी जययुक्त हो। इसका अभिप्राय यह है कि अपने ठहरने के लिये वटवृक्ष के पास गए हुए किसी बटोही से राधिकाजीने कहा कि भाण्डीर वन में कृष्णसर्प रहता है आप नन्दजी के घर जाकर विश्राम करो, वहाँ सर्व प्रकार की सुविधा होगी यही पूर्वोक्त वचनों को सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र ने विचारा कि हमलोगों की कलई कहीं नन्दजी के सामने न खुल जाय, क्योंकि आज रात्रि में इसी भाण्डीर-वट के नीचे राधिका से मिलने की हमने प्रतिज्ञा की है। इसी से राधिका ने श्लिष्ट (दो अर्थ में) "कृष्णभोगिभवने" ऐसा कहा है। इसी कारण श्रीकृष्णचन्द्र ने उस बातको छिपाने के लिये उस पथिक की प्रशंसा करने लगे कि 'आपका स्वागत हो, हे महाराज! आपने बड़ी कृपा की' इत्यादि ॥ ३ ॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दकाव्ये षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

—०ॐ०—

अधुना चन्द्रोदयव्याजेन राधाया विरहव्यथाधिक्यं वर्णयन्नाह—

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपात-[1]
सञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः ।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालै-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनबिन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

इसके बाद कुलटा (व्यभिचारिणी) अभिसारिका स्त्रियों के रास्ते को रोकने के पाप से मानो स्पष्ट कलङ्कित और पूर्वदिशारूप रमणी के मुखारविन्द के चन्दनबिन्दु के समान चन्द्रमा अपने किरणसमूह से समूचे वृन्दावन को प्रकाशित कर दिया अर्थात् चन्द्रोदय हो गया ॥१॥

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा ।
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥ २ ॥

जब चन्द्रमा का बिम्ब ऊपर को चढ़ा आता था और श्रीकृष्ण के आने में विलम्ब हुआ तब श्रीकृष्णचन्द्र की अनुरागिणी वह वियोगिनी राधिका नाना प्रकार के विलाप करने लगी और दुःखी हुई ॥ २ ॥

त्रयोदशः प्रबन्धो गौडमालवारागेण प्रतिमण्ठताले गीयते ।

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनं
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ।
यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ॥ ध्रु० ॥१॥

अब राधिकाजी गीत में विलाप करती है कि रे मेरे मन ! कहे हुए समय पर भी श्रीकृष्णचन्द्रजी इस वन में नहीं आए इसमें बड़ा भारी आश्चर्य वा खेद है, अब समागम योग्य मेरी यह जवानी

---

१ 'वर्त्मघात' इति पाठः ।

श्रीकृष्णचन्द्रजी के विना निष्फल है। "श्रीकृष्णचन्द्रजी अभी आते हैं" यों कह २ कर सखियों से ठगी गई मैं किसकी शरण जाऊँ अर्थात् अब मेरा कोई भी संरक्षक नहीं है, जब विश्वासपात्र सखियों ने ही विश्वासघात किया तब तो अब मैं 'कं=जल' ही की शरण जाऊँगी अर्थात् जल में ही डूब मरूँगी ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ।
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥ यामि० ॥२॥

जिस श्रीकृष्णचन्द्रजी के लिये मैंने इस घोर अन्धकारमयी रात्रि के समय इस घोर जंगल में निवास किया उन्हीं श्रीकृष्णजी ने मेरे हृदय में कामदेव के बाणों को गाड़ दिया ॥ २ ॥

मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना[1] ।
किमिति[2] विषहामि विरहानलमचेतना ॥ यामि० ॥३॥

अब मैं इस वन में ज्ञानशून्य होकर विरह की अग्नि को कैसे सह सकती हूँ और यह शरीर भी व्यर्थ है इससे तो मरना ही अच्छा है ॥३॥

मामहह[3] विधुरयति मधुरमधुयामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥ यामि० ॥४॥

वड़े दुःख की बात है कि मनोहर वसन्त की रात्रि हमको तो दुःख दे रही है और कोई अति पुण्यशालिनी गोपवनिता श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ आनन्द कर रही है[4] ॥ ४ ॥

---

१ 'अतिवितथकेतना' इति पाठः । २ किमिव विषहामि' इति पाठः ।
३ 'मामिह' इति पाठः ।

४ सवतीया डाह वस्तुतः कठोर दुःखदाई होता है—

मारो न याहि गरीविनी को पिय, यों कहि भौंह नचाइबो तेरो ।
छोविवो ऊपर ते मिसकै पिय अङ्गते अङ्ग छुआइबो तेरो ॥
बालम नैन ते नैन मिलै मुसकाय के धाय छुडायइबो तेरो ।
मोहिं मारिवो पीको न सालत है, जस सालत सौती बचाइबो तेरो ॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ।
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ॥ ५ ॥

हाय ! मैं मणियों के कङ्कण इत्यादि आभूषणों को श्रीकृष्णचन्द्र की विरहाग्नि से दूषण समझती हूँ (ठीक ही है क्योंकि, अग्नि के पास रत्नादि जड़ित भूषण भी दूषण हो जाते हैं। स्त्रियों के आभूषणादि जब तक प्रियतम न देखे तब तक उनको वे व्यर्थ मानतीं हैं) ॥ ५ ॥

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति मामतिविषमशीलया ॥ यामि० ॥६॥

फूलों के समान कोमल अङ्गवाली मुझे (कोमल) पुष्पों की माला भी अति दारुण कामदेव के बाण की तरह मार रही है (अर्थात् विरहियों को पुष्पों की माला भी कामोद्दीपक होने के कारण दुःखप्रद मालूम पड़ती है) ॥ ६ ॥

अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥ यामि० ॥७॥

मैं तो श्रीकृष्णचन्द्रजी के लिये बन और वेतस की पंक्तियों को कुछ भी न गिन इस घोर वन में निवास करती हूँ और श्रीकृष्णचन्द्रजी हमको चित्त से भी स्मरण नहीं करते हैं यहाँ आना तो दूर रहा ॥ ७ ॥

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ॥ यामि० ॥ ८ ॥

सुमधुर कला (साहित्य सङ्गीत कला) से युक्त, श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरणों को शरण माननेवाली जयदेव कवि की यह वाणी भक्तों के हृदय में जैसे रसिकजनों के हृदय में सुन्दर कला (शृङ्गार १६ कला) जानने वाली युवती नायिकासी निवास करे ॥ ८ ॥

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किंवा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते[1] किमु भ्राम्यति ।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी के न आने पर राधिका सङ्कल्प विकल्प अपने मन में हीं कर रही है, कि श्रीकृष्णचन्द्रजी क्या किसी दूसरी कामिनी के अभिसरण (संकेत) स्थान में चले गये, अथवा अपने इष्टमित्रों के हास्यक्रीडा में फँस गये या इस अन्धकार युक्त गहन वन में भूलकर इधर उधर ढूँढ़ रहे हैं। थोड़ा ही समय हुआ कि, अत्यन्त अन्धकार था उसमें मार्ग का भूलना सम्भव है या जैसे मैं श्रीकृष्णजी के विरह में दुःखित होकर एक पग भी नहीं चल सकती ऐसे ही वे भी मेरे वियोग से दुःखित होकर चलने में असमर्थ हो गये। क्योंकि, इस सुन्दर बेतसलता के कुञ्ज को अपना संकेतस्थल बनाकर भी नहीं आये ॥ १ ॥

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम् ।
विशङ्कमाना रमितं कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह ॥ २ ॥

इसके बाद कार्य की सिद्धि न होने से दुःखित और चुपचाप तथा श्रीकृष्णजी के विना अकेली आई हुई सखी को देखकर "श्रीकृष्णजी क्या ? किसी दूसरी गोपरमणी के साथ तो रमण नहीं करते हैं" इस काय को नेत्रों से देखने के समान शङ्का करनेवाली राधिका सखी से यों बोली ॥ २ ॥

अथ चतुर्दशप्रबन्धो वसन्तरागेण एकतालीताले गीयते ।

स्मरसमरोचितविरचितवेषा । गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ॥
कापि (चपला) मधुरिपुणा विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ध्रु०॥१॥

---

१ 'वनाभ्यर्णे' इति पाठभेदः ।

हे सखि ! कामसंग्राम (संभोग) के योग्य आभूषणादि धारण करनेवाली, विपरीत रति करने के समय केशों के पुष्प इधर उधर गिर गये हैं और वेणी भी ढीली हो गई है ऐसे वेषवाली कोई चपला और हमसे भी अधिक सौन्दर्य्यादि गुणवाली कोई कामिनी श्रीकृष्ण-चन्द्र के साथ विलास कर रही है ॥ १ ॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ।

कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ कापि० ॥ २ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्णचन्द्रजी के आलिङ्गन करने से उत्पन्न काम विकार स्पष्ट होगये हैं जिसके और विपरीत रति में कुचरूपी कलशों पर हार हिल रहें हैं जिसके-ऐसी कोई रमणी श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रमण कर रही है ॥ २ ॥

विचलदलकललिताननचन्द्रा ।

तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि० ॥ ३ ॥

हे सखि ! जिसके सुन्दर मुखरूपी चन्द्रमा में चञ्चल अलका-वली सुशोभित हो रही है और जिसको श्रीकृष्ण के अधरामृत पान करने से तन्द्रा (आलस्य) आ रही है ऐसी कोई व्रजवनिता श्रीकृष्ण के साथ आनन्द कर रहो है ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ।

मुखरितरसनजघनगतिलोला ॥ कापि० ॥ ४ ॥

विपरीत रति में कुण्डलों की रगड़ लग लग कर कपोल घिस गये हैं जिसके, झन झन शब्द करने वाली करधनी से युक्त जघनों के हिलाने से स्वयं चञ्चला कोई गोपललना श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रमण कर रही है ॥ ४ ॥

दयितविलोकितलज्जितहसिता ।

बहुविधिकूजितरतिरसरसिता ॥ कापि० ॥ ५ ॥

हे सखि ! प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र जी के कटाक्ष सहित दृष्टि से लज्जा के साथ मन्द २ मुसक्यानेवाली और नाना प्रकार की रतिक्रीडा में नाना प्रकार के हंस, मयूर, पिक इत्यादि पक्षियों की मीठी २ वाणी से प्रसन्न कोई व्रजचपला श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ विहार कर रही है ॥५॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा ।

श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा ॥ कापि० ॥ ६ ॥

रति के आनन्द से रोमाञ्चित और कम्पायमान सर्वाङ्गवाली, और विभिन्न स्वरवाली और (प्रगाढ़ मैथुन करने से विशेष) श्वास लेने वाली और नेत्रों को मूंद लेने से जिसके काम के भाव प्रफुल्लित होगये हैं ऐसी कोई गोपवनिता श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ सम्भोग कर रही है ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।

परिपतितोरसि रतिरणधीरा ॥ कापि० ॥ ७ ॥

सुरत के परिश्रम सम्बन्धी स्वेद (पसीना) के बिन्दुओं के समूह से शोभित शरीरवाली और विपरीत रति में श्रीकृष्णचन्द्र के वक्षस्थल पर स्थित और रतिरूप युद्ध में धैर्य को धारण करने वाली कोई गोपाङ्गना श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रतिक्रीड़ा कर रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितहरिरमितम् ।

कलिकलुषं जनयतु परिशमितम् ॥ कापि० ॥ ८ ॥

यह श्रीजयदेव कवि का बनाया श्रीकृष्ण के सम्भोग का वर्णन सुननेवालों के कलयुगसम्बन्धी पापों का नाश करै ॥ ८ ॥

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुजद्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।

विधुरतीव तनोति मनोभुवः सुहृदये हृदये मदनव्यथाम्॥१॥

अयि सुहृदये[1] ! मेरे विरह से पीले रङ्गवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के

---

१ यह कोमल सम्बोधन है ।

मुखारविन्द के समान पीले रङ्गवाला, कामदेव का मित्र यह चन्द्रमा आनन्द देनेवाला है तौ भी मेरे हृदय में कामदेव की पीड़ा को बढ़ाता है ॥ १ ॥

अथ पञ्चदशप्रबन्धो गुर्जरीरागेण एकतालीताले गीयते ।

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥ ध्रु० ॥

हे सखि ! श्रीकृष्णचन्द्रजी कामोद्दीपन (काम को जगाने) के लक्षणों से युक्त और चुम्बन करने से संकुचित सुन्दर अधर (ओठ) वाली किसी गोपाङ्गना के मुख पर कस्तूरी का तिलक बनाते हैं। चन्द्रमा में हरिण को लिखते हैं ऐसे कामक्रीड़ा में विजय पाने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी यमुना के तीर वाले वन में इस समय रमते हैं ॥ १ ॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने ।
कुरबककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने ॥ रमते० ॥

हे सखि ! मेघों के झुण्ड के समान सुन्दर, युवजनों के मन को चञ्चल करने वाले और कामदेव रूपी मृग के वन रूप गोपवनिता की वेणी (जैसे मृगों का निवासस्थान वन है वैसे कामदेव का स्थान केशपाश है) में श्रीकृष्णचन्द्रजी बिजली के समान सुशोभित (पीले) कुरबक का फूल लगाते हैं अर्थात् कुरबक के फूलों से से वेणी गूंथते हैं ॥ २ ॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते ।
मणिसरममलं तारकपटलं नखपदशशिभूषिते ॥रमते०॥३॥

हे सखि ! श्रीकृष्णचन्द्रजी कस्तूरी की शोभा से युक्त, नख चिह्न रूपी चन्द्रमा से सुशोभित कठोर दोनों स्तन रूप आकाश में निर्मल मणियों के हारस्वरूप ताराओं को पहनाते हैं । (यहाँ कस्तूरी से आकाश

की, नख के चिह्न से चन्द्रमा की और मणियों के हार से तारों की बराबरी दिखाई है। अर्थात् गोपियों के कस्तूरी लगे और नक्षत्रों से चिह्नित स्तनों पर हीरों के हार पहनाते हैं) ॥ ३ ॥

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले।
मरकतवलयं मधुरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥रमते०॥४॥

हे सखि ! श्रीकृष्णचन्द्रजी कमल डंटियों से भी अधिक शोभायमान कमल के फूल की नाईं करतल (हथेली) वाले और हिम के समान ठण्ढे हाथों में मरकत मणियों से जड़ित कंकण पहनाते हैं मानों कमल के फूलों पर भ्रमर बैठे हों ॥ ४ ॥

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने।
मणिमयरसनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥रमते०॥५॥

हे सखि ! वह श्रीकृष्णचन्द्रजी कामदेव के बैठने के किये सुवर्ण क आसन, रति के निवास स्थान और सुन्दर बारीक वस्त्र को धारण करने वाले किसी गोपी के अत्यन्त मोटे २ जघनस्थलों पर तोरण के समान करधनी पहनाते हैं ॥ ५ ॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते।
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥रमते०॥६॥

हे सखि ! वह श्रीकृष्णचन्द्रजी लक्ष्मी के निवास स्थान, और नखस्वरूप मणियों से सुशोभित (किसी गोपरमणी के) कोमल २ पत्तों के समान स्वच्छ चरणों को अपने हृदय पर रखके यावक (महावर) लगाते हैं ॥ ६ ॥

रमयति सुदृशं कामपि सुभृशं खलहलधरसोदरे।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे॥रमते०॥७॥

हे सखि ! जब वह धूर्त हलधर (बलदेवजी) का छोटा भाई किसी सुनयनी के साथ रमण करता है तब तुम्हीं कहो कि इस

वतसलता की झोपड़ी में रस (शृङ्गार रस) के विना बहुत देर तक मैं क्यों बैठी रहूँ अर्थात् झूठमूठ श्रीकृष्ण को अगोरना ठीक नहीं अब अपने घर चलो ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ॥ ८ ॥

शृङ्गार रस का वर्णन करने वाले, हरिगुणों का गान करने वाले, और श्रीकृष्णचन्द्र के सेवक जयदेव कविराज के हृदय में कलियुग के पापों का निवास न होय ॥ ८ ॥

कृष्णस्यानागमनेन दुःखितां सखीमाश्वासयन्त्याह—

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ।
पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति ॥ १ ॥

हे सखि ! हे दूतिके ! यदि निर्दयी और ठग श्रीकृष्णचन्द्रजी नहीं आये तो इसमें तुम क्यों दुःखी होती हो, क्योंकि वे बहुत सी प्यारी स्त्रियों को रखने वाले उन स्त्रियों के साथ अपनी इच्छा पूर्वक रमण करते हैं, इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? अर्थात् तूं इतनी दुःखी क्यों हो रही है। देख ! उस प्राणप्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी के सौन्दर्य्यादि गुणों के वशीभूत होकर तथा उत्कण्ठा और कामदेव की पीड़ा के बोझ से मानो बाहर निकल कर यह मेरा अन्तःकरण खुद ही उनसे मिलने जायगा (अर्थात् राधिका कहती हैं कि मैं उन [कृष्ण] के गुणों में मुग्ध हो कामदेव की पीड़ा से मर कर श्रीकृष्ण में मिल जाऊँगी, क्योंकि मरने के समय जिसका चित्त जिस वस्तु में लगा रहता है दूसरे जन्म में वह उससे अवश्य मिलता है) ॥ १ ॥

अथ षोडशप्रबन्धो देशाङ्कुरागेण रूपकताले गीयते—

अनिलतरलकुवलयनयनेन । तपति न सा किसलयशयनेन ॥१॥

सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० ॥

हे सखि ! वायु से चलायमान कमल के समान नेत्र वाले वनमाली (श्रीकृष्णचन्द्र) के साथ जिस रमणी ने रमण किया है वह कोमल पत्तों की शय्या पर शयन करने से दुःखी नहीं होती है। अर्थात् हमारे सदृश जिसने रमण नहीं किया वह तो कोमल पत्तों की शय्या पर सोने से भी दुःखी है ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ।

स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि० ॥ २ ॥

हे सखि ! खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुख वाले श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ रमण करने वाली व्रजाङ्गना कामदेव के बाणों से दो टुकड़े (पीड़ित) नहीं होती है और जो मेरे सदृश हैं उनका हृदय टुकड़े २ हो रहा है ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ।

ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि० ॥ ३ ॥

हे सखि ! अमृत से भी अधिक मीठे और मनोहर वचन बोलने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रमण करने वाली गोपिका मलयाचल सम्बन्धी (शीतल मन्द सुगन्ध) वायु से नहीं जलती हैं। (और नहीं रमण करने वाली हमारी जैसी अभिसारिका को मलयानिल भी अवश्य ही दग्ध करता है) ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ।

लुठति न सा हिमकरकिरणेन ॥ सखि० ॥ ४ ॥

हे सखि ! स्थल कमल (गुलाब) के समान हाथ और चरण वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ गोपरमणी चन्द्रमा की शीतल किरणों के

स्पर्श से लोटती (दुःखी) नहीं है और जिसने श्रीकृष्णके साथ मेरे सदृश रमण नहीं किया उसको तो चन्द्रमा की किरणें भी बहुत जलाती हैं ॥ ४ ॥

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ।

दलति न सा हृदि चिरविरहेण ॥ सखि० ॥ ५ ॥

हे सखि! जलभरे मेघों के समूह के समान वर्ण वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ जिस गोपरमणी ने रमण किया है उसका हृदय विरहादि से फटता नहीं है और मेरे सदृश नहीं रमण करने वाली का हृदय अवश्य ही विदीर्ण होता है ॥ ५ ॥

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ।

श्वसिति न सा परिजनहसनेन ॥ सखि० ॥ ६ ॥

हे सखि! सुवर्ण के समान पीला और स्वच्छ (साफ) वस्त्र धारण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रमण करने वाली व्रजवनिता सखियों के हास्य से दुःखसूचक श्वास नहीं लेती और जो मेरे सदृश विना भोगी गई है वह अवश्य ही बारम्बार श्वास लेती है ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ।

वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥ सखि० ॥ ७ ॥

हे सखि! त्रैलोक्य के समस्त सज्जनों में श्रेष्ठ जवान और अति दयालु श्रीकृष्णचन्द्र के साथ जिस व्रजवनिता ने रमण किया है वह किसी प्रकार पीड़ित नहीं होती और जिसने मेरे सदृश श्रीकृष्ण जी के साथ सुरत नहीं किया वह सब प्रकार की पीडाओं का अनुभव करती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ।

प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि० ॥ ८ ॥

श्रीजयदेव कवि के इन वाक्यों से श्रीकृष्णचन्द्र जी भक्तों के हृदय में प्रवेश करें (अर्थात् भक्तों के हृदय में प्रवेश करके समस्त भक्तजनों के पापों का नाश करें) ॥ ८ ॥

पीडयन्तं मलयानिलं प्रार्थयते—

मनोभवानन्दन चन्दनानिल प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।
क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥१॥

हे कामदेव को जगानेवाले मलयाचल सम्बन्धी दक्षिण के वायु! आप अपनी कुटिलता को छोड़िये और हमारे ऊपर प्रसन्न होइये। और हे जगत् के प्राण! यदि तुम्हारी इच्छा हमारे प्राण हरने की ही है तो क्षणमात्र के लिए श्रीकृष्णचन्द्र जी को मेरे सम्मुख खड़ा करके मेरा प्राण हरण कर लेना ॥ १ ॥

रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्दूरं दुनोति मनोगते ।
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ॥ २ ॥

हे सखि! जब उस श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता है तब सखियों के साथ बैठना शत्रु के समान, शीतल वायु अग्नि के सदृश और अमृतरश्मि चन्द्रमा विष के समान अत्यन्त दुःखी कर देता है तो भी मेरा मन उस निर्दयी श्रीकृष्ण में बलात्कार से चला ही जाता है। अतः हे सखि! स्त्रियों के लिये कामदेव अति कुटिल और निरंकुश है अर्थात् जैसे मदमत्त हाथी अंकुश के न रहने से मनमानी चाल चलता है उसी प्रकार प्रियतम के न रहने पर नई युवती स्त्रियों को कामदेव का मद शिर पर चढ़ जाता है तब वे अपनी मनमानी चालें चलती हैं ॥ २ ॥

पुनरपि जीवितनिरपेक्षत्वेन मलयानिलादीन्प्रत्याह—

बाधां विधेहि मलयानिल पञ्चबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ।
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै-
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

हे मलय पवन ! तुम हमको जितनी इच्छा हो उतनी पीड़ा दे लो। और हे कामदेव ! आप भी मेरे प्राणों को हरण करिये, परन्तु अब मैं प्राणों के रहते घर नहीं जाऊँगी। और हे यमराज की बहिन यमुने ! तुम भी अब मुझ पर क्षमा क्यों करती हो ? क्योंकि तुम यमराज की बहिन हो अपने तरंगों से मेरे अंगों को सींचो जिसमें मेरा सन्ताप सदा के लिये दूर हो जाय। अर्थात् अपने जल में डुबा लो, क्योंकि अब श्रीकृष्णजी के बिना मेरा जीना व्यर्थ है ॥ ३ ॥

इदानीं सर्गान्ते कविर्भक्तानाशास्ते—

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरःसंवीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्वादुस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ॥ ४ ॥

प्रातःकाल राधिका के नीले वस्त्र को पहने श्रीकृष्णचन्द्रजी को और श्रीकृष्णजी के पीताम्बर से ढके राधिका महारानी जी के वक्षःस्थल को देखकर सखियों की मण्डली के आश्चर्य में आकर धीरे धीरे हँसने पर लज्जायुक्त चञ्चल नेत्रों के अञ्चल को राधिका जी के मुखारविन्द पर रखने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी संसार को आनन्ददायी हों ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

—०꙳०—

अधुना राधा प्रातरागतं प्रियं दृष्ट्वा साभ्यसूयमाह—

अथ कथमपि यामिनीं निनीय स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते ।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥१॥

इसके बाद अति कष्ट से रात्रि को व्यतीत कर कामदेव के बाणों से जर्जरित होने पर भी वह राधिका प्रातःकाल में आकर नम्रता-पूर्वक वचनों को कहने वाले और पावों पर पड़के प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णजी से ईर्षायुक्त वचन बोली ॥ १ ॥

अथ सप्तदशप्रबन्धो भैरवीरागेण यतिताले गीयते—

साभ्यसूयवचनमेव गीतेनाह—

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम्[1] ।
वहति[2] नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ॥१॥
हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ॥ध्रु०॥

हरि हरि (राम राम) बड़े दुःख का विषय है । हे केशव ! आप उसी के पास जाइए, हे माधव ! आप उसी के पास जाइये, हे कमल-लोचन ! जो आपके दुःख को हरण करती है । और इतने धूर्तता के वचन मत कहिये । यदि यह कहो कि 'तुम्हारे बिना मेरा दुःख नाश करने वाली दूसरी कोई नहीं' तो यह आपके नेत्र रात्रि के जागरण से लालवर्ण के हो रहे हैं, पलकों में भी आलस्य दिखाई देता है और आपके लालवर्ण नेत्र से स्पष्टतया यह मालूम होता है कि नेत्र

१ 'निवेशम्' इत्यपि पाठः । २ 'वहसि' इति पाठः ।

में किसी स्त्री के श्रृङ्गाररस का अनुराग भरा है, अतः ये लालरंग के हो रहे हैं ॥ १ ॥

ननु त्वदन्वेषणार्थं जागरान्मे नेत्रयोर्लौहित्यमलं दुःशङ्कयेत्यत आह—

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोरनुरूपम् ॥२॥ हरि हरि०॥

तुम्हारे खोजन के लिये जागने से यह आँखें लाल हुई हैं यदि ऐसा कहो तो इस पर राधाजी कहती हैं—हे केशव! हे श्रीकृष्ण! कज्जल से मलिन उस स्त्री के नेत्रों का चुम्बन करने से आपके ये लालवर्ण वाले ओठ नीले रंग के होकर आपके शरीर के समान (काले) हो गये हैं, अतः आप उसी के पास जाइये, जिसके नेत्र चुम्बन किये हैं ॥ २ ॥

वपुरनुवहति[1] तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् । मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम् ॥३॥ हरि हरि० ॥

हे केशव! कामयुद्ध में तीखे २ नखों के क्षत (घाव) से रेखायुक्त आपका शरीर (मानो उस स्त्री से प्रसन्न) होकर मरकत (नीला सङ्गमरमर) की शिला के टुकड़े पर सुवर्णाक्षरों से लिख कर रतिरण के विजय पत्र (प्रशंसापत्र, सार्टिफिकेट) की शोभा को धारण कर रहा है। अतः जिसने आपको रतिरण विजय का प्रशंसापत्र दिया है उसीके पास जाइये ॥ ३ ॥

ननु मार्गं विस्मृत्यागच्छतो मे वपुषि वने कण्टकादिक्षतं दृश्यते; न तु नखाङ्कमित्यत आह—

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥४॥ हरि हरि०॥

कदाचित् यह कहो कि तुम्हारे खोजने के लिये रात में आते समय

---

१ 'अनुहरति' इति पाठभेदः ।

यह काँटों से लिख गया है, नखक्षत नहीं हैं। इस पर राधा कहती है कि हे श्रीकृष्णचन्द्रजी! उसके चरणरूपी कमलों में लगी हुई महावर से सींचा गया यह आपका हृदय ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेव-रूपी वृक्ष के नवीन पत्तों का समूह बाहर हो गया हो, अतः जिसके चरणकमल की महावर आपके हृदय में लगी है उसीके पास जाइये॥४॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम्।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम्॥५॥हरि०॥

हे माधव! आपके ओठों पर लगे यह अन्य गोपांगनाओं के दाँतों के चिन्ह मेरे हृदय में दुःख उपजाते हैं। इस समय आपके और मेरे शरीरों में कितना अभेद (एकता) है यह आपका शरीर ही कह रहा है। यह आपका शरीर अन्य गोपियों से अपने ओठों पर दन्तक्षत करवाकर हमको दुःख दे रहा है, अतः आप चिह्न करवाने वाली के पास जाइये॥ ५॥

ननु तवोपायनार्थं कमलत्रोटनं कृतवति मयि पद्मकोशादापतता भृङ्गेण ममाधरोष्ठो दष्टो न तु दन्तक्षतमिदमित्यत आह—

बहिरिव[1] मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम्।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम्॥६॥हरि हरि०॥

तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं कमल का फूल तोड़ने गया इससे मेरे ओठों को भँवरों ने काट लिया यह दन्तक्षत नहीं है। इस पर राधा कहती हैं—हे श्रीकृष्णजी! जैसे आपका शरीर बाहर से कृष्ण-वर्ण है वैसे ही आपका मन भी कृष्णवर्ण (मलिन) है यह मुझे जान पड़ता है। यदि आप कहिये कि ऐसा नहीं तो कामदेव की ज्वाला से सन्तापित इस जन को कैसे ठग रहे हो, अतः उसी के पास जाइये जिससे हृदय खोल कर मन से मिले हो॥ ६॥

---

१ 'वपुरिव' इति पाठः।

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम् ॥७॥हरिहरि०॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आप इस वन में अबलाओं को ग्रास करने ही के लिये घूम रहे हो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। क्योंकि पूतना नाम राक्षसी ही निर्दय होकर स्त्रियों के मारने वाले बालचरित्र को कह रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम् । ८॥हरिहरि०॥

हे पण्डित जनो ! श्रीजयदेव कवि के बनाये हुए सम्भोग शृङ्गार रस से वंचित खण्डिता नायिका के विलाप को सुनिये, क्योंकि अमृत से भी अधिक मीठा यह श्रीकृष्ण का चरित्र स्वर्ग में दुर्लभ है ॥ ८ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणद्योति हृदयम् ।
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभंगेन कितव
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥१॥

हे ठग श्रीकृष्णजी ! दूसरी गोपवनिता के चरणों में लगे हुए लालवर्ण के महावर से युक्त आपका हृदय बाहिर ही के अनुराग से व्याप्त की तरह मालूम पड़ता है अर्थात् आपके हृदय में लगा हुआ यह महावर ही कह रहा है कि इनके अन्तःकरण में प्रेम नहीं है। बनावटी प्रेम वाले आपके हृदय को देखकर संसार में प्रसिद्ध अतिशय प्रेम के विलोप से यह आपका दर्शन हमको शोक से विलक्षण लज्जा को उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

इदानीं कविर्भक्तेभ्य आशास्ते—

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसन-
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ॥
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः ॥२॥

मृगी के जैसे नेत्र वाली स्त्रियों के अन्तःकरण को मोहन करने में, धन्य २ कहने के समय (वाहवाही के वक्त) वेणी में गुथे हुए पारिजात के पुष्पों की वेणी से खसकाने में, जड़ पदार्थों को भी अपनी ओर खींचने में, मुरली बजाने के समय देखने तथा सुनने वालों के नेत्रादिकों को आनन्दित करने में महामन्त्र रूप और गर्वित दानवों पीड़ित देवताओं के दुःसह दुःख के विनाश करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र जी की वंशी की ध्वनि आप लोगों (भक्तजनों) के कल्याण के वास्ते हो ॥२॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्देऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

प्रणयकोपात् हरिमधिक्षिप्येदानीं कृतपश्चात्तापां सखी आह—

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विषादसम्पन्नाम् ।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच रहसि सखी ॥१॥

इसके बाद कामदेव की पीड़ा से पीड़िता, रतिरस से रहिता, अति दुःखिता, श्रीकृष्णचन्द्र के चरित्रों का स्मरण करने वाली कलहान्तरिता[1] राधिका से कोई सखी एकान्त में बोली ॥ १ ॥

---

१ पति का तिरस्कार करके पश्चात्ताप करने वाली को कलहान्तरिता कहते हैं ।

अथ अष्टादशप्रबन्धो गुर्जरीरागेण यतिताले गीयते—

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।
किमपरमधिकसुखं सखि भवने ॥ १ ॥
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये ॥ ध्रु० ॥

हे मान करनेवाली राधिके! तुम श्रीकृष्णचन्द्रजी के विषय में कुछ भी मान मत करो। अयि सखि राधिके! इस वसन्तकालिक वायु के बहने पर श्रीकृष्णचन्द्रजी तुम्हारे संकेतभूमि में स्वयं चले आये तो अब इससे बढ़कर घर पर क्या आनन्द होगा अर्थात् अभिसार में नायक के स्वयं चले आने पर तुम्हारा मान करना ठीक नहीं ॥ १ ॥

तालफलादपि गुरुमतिसरसम् ।
किं विफलीकुरुषे कुचकलशम् ॥ २ ॥ माधवे० ॥

अयि सखि राधिके! तालफल से भी अधिक बड़े और सरस इन कलश के ऐसे कुचों को क्यों निष्फल करती हो अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रजी का आलिंगन कर इन बड़े २ कुचों को सफल करो। तालफलों के खाने पर मादकता होती है और इनके दर्शनमात्र ही से अधिक मादकता हो जाती है, इससे तालफल की अपेक्षा इनमें अधिकता है ॥२॥

ननु यदा हरिरागतस्तदा त्वया न कथितमित्यत आह—

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ॥ ३ ॥ माधवे० ॥

अयि सखि राधिके! 'अति सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रजी का त्याग मत करो' यह मैंने नहीं कहा था? अर्थात् कई बार कहा था ॥ ३ ॥

एवं सुमुखीं प्रत्याह—

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ।
विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ ४ ॥ माधवे० ॥

अयि राधे! तुम अब क्यों व्यर्थ विषाद करती हो और क्यों विकल हो हो कर रो रही हो? गृह में आए हुए श्रीकृष्णचन्द्र का तिरस्कार करके उन्हीं के लिए रोने के कारण यह युवती गोपियों की सभा तुमको देख २ हँसती है ॥ ४ ॥

तर्हि किं करोमीत्यत आह—

मृदुनलिनीदलशीतलशयने[1] ।

हरिमवलोकय सफलय नयने ॥ ५ ॥ माधवे० ॥

अयि राधे! कोमल २ कमलिनियों के फूलों से रचित अतएव शीतल शय्या पर बैठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन करो और फिर अपने नेत्रों को सफल करो ॥ ५ ॥

विचारयन्तीं प्रत्याह—

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।

शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ ६ ॥ माधवे० ॥

अयि राधे! तुम अपने मन में क्यों इतना दुःख करती हो? मुझे अपना समझ कर मेरा कहना सुनो अर्थात् मैं तुम्हारे हित की बात कहूँगी ॥ ६ ॥

कीदृशं वचनमित्यत आह—

हरिरुपयातु वदतु बहु मधुरम् ।

किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् ॥ ७ ॥ माधवे० ॥

हे राधे! ऐसा करो कि श्रीकृष्णचन्द्रजी तुम्हारे पास आवें और मीठे २ वचन कहें। तुम अपने चित्त को क्यों दुखा रही हो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।

सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् ॥ ८ ॥ माधवे० ॥

---

१ 'सजलनलिनीदलशीतलशयने' इति पाठभेदः ।

श्रीजयदेव कवि रचित, अति सुन्दर, यह श्रीकृष्णचन्द्र का चरित्र रसिकजनों को सुख देवे ॥ ८ ॥

इदानीं प्रणतमपि प्रियमतिरोषात्त्यजन्तीं राधां निन्दन्ती सखी प्राह—

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन् प्रिये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चा विषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ १ ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ विपरीत (उलटा) व्यवहार करने वाली राधिके ! तुम्हारे साथ मीठी २ बातें कहने वाले कृष्ण से कठोर बातें करती हो, विनय प्रकाश करनेवाले कृष्ण के साथ जड़वत् (मूक के सदृश) आचरण करती हो (अर्थात् श्रीकृष्णजी के प्रणाम करने पर भी उत्तर नहीं देती) तुम पर प्रेम प्रकट करने वाले कृष्ण से शत्रुतुल्य व्यवहार करती हो, और श्रीकृष्णचन्द्र के तुम्हारे सन्मुख होने पर तुम उनसे अपना मुख फेर कर बैठ जाती हो उसी का यह फल है कि, तुमको चन्दन का लेप लगाना तो दूर रहा यदि कोई चन्दन की चर्चा भी करता है तो तुमको विष के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान, पाला (बरफ) अग्नि के समान, और क्रीड़ा आनन्द यमयातना के समान लगते हैं ॥ १ ॥

सर्गान्ते कविर्नमस्करोति—

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम्[1] ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दर[2]गलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥ २ ॥

१ 'सन्दर्शितेन्दिन्दिरम्' इति पाठभेदः । २ 'सुन्दरमिलन्' इत्यपि पाठः ।

अत्यन्त आदरपूर्वक—अति प्रसन्न होकर इन्द्रादि देवताओं के समूह से नीलमणि जड़े मुकुटों से झुक कर प्रणाम करने पर कमल की शोभा धारण करने वाले और पुष्परस (शहद) के सदृश स्वच्छन्द निकलने वाली गंगा से स्निग्ध (चिकने) श्रीकृष्णजी के चरणारविन्दों को हम लोग अशुभ (पाप) के विनाशार्थ प्रणाम करते हैं। यहाँ भगवान् के चरण को कमल, देवताओं के मुकुट में लगे नीलम को भँवरा और पुष्परस को गङ्गा इस तरह कमल के सब गुणों की उत्प्रेक्षा की है ॥ २ ॥

॥ इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

इदानीं सोत्कण्ठः कृष्णो राधां दृष्ट्वा अनुनयन्नाह—

अथान्तरे[1] मसृणरोषवशामसीमं[2]-

निःश्वासनिःसहमुखीं सुमुखीमुपेत्य ।

सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते

सानन्दगद्गदपदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

इसी समय (राधिकाजी को समझाते समय) सन्ध्या के समय क्रोध करने वाली, उसी क्रोध से बारम्बार निकलते हुए श्वास के सहने में असमर्थ मुखवाली और लज्जाके साथ सखी के मुख की ओर निहारने वाली सुन्दरमुखी राधिका के पास जाकर और आनंद में गद्गद होकर (राधिका से) श्रीकृष्णचन्द्र यों बोले ॥ १ ॥

---

१ 'अत्रान्तरेऽमसृण' इति पाठः । २ 'वशादसीम' 'वशामपार' इति पाठभेदः ।

उक्तमथ गीतेनाह—

अथ एकोनविंशः प्रबन्धो देशवराडीरागेण अष्टतालीताले गीयते—

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी हरतु दरतिमिरमतिघोरम् ।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा रोचयति[1] लोचनचकोरम् ॥१॥
प्रिये चारुशीले मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ध्रु०॥

हे प्रिये ! सुन्दर स्वभाव वाली प्राणप्रिये ! राधिके ! अब तो तुम विना कारण के मान को छोड़ो, क्योंकि कामदेव संबंधी अग्नि हमारे हृदय को अत्यन्त ही जला रहा है । इस लिये उसीके शान्त्यर्थ अपने मुखरूपी कमल की सुधा का पान करावो । हे प्रिये ! जब तुम कुछ बोलती हो तब तुम्हारे दाँतों की चाँदनी मेरे भयरूपी अतिघोर अन्धकार को विनाश करता है और तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा तुम्हारे अधरों की सुधा का पान करने के लिये मेरे नेत्ररूपी चकोरों को ललचाता है ॥ १ ॥

मृषा रोषं प्रकाशयन्तीमाह—

सत्यमेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी देहि खरनखरशरघातम् ।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं येन वा भवति सुखजातम् ॥२प्रिये०॥

हे सुन्दर दाँतोंवाली प्यारी ! यदि तुम हमारे ऊपर क्रोधित हो तो तुम हमको अपने तीखे नखरूपी बाणों से घात करो, भुजाओं में हमको बाँध लो और उससे भी सन्तोष न हो तो दाँतों से काट लो अथवा हमारे दण्ड के विषय में जिस बात से तुमको सन्तोष मिलै वैसा ही हमको दण्ड दो ॥ २ ॥

---

१ 'रोचयतु' इत्यपि पाठः ।

ननु याऽतिप्रिया सा दण्डं विदधातु किं मयात आह—

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं,
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी,
तत्र मम हृदयमतियत्नम् ॥ ३ ॥ प्रिये० ॥

हे प्रिये ! तुम्हीं मेरे भूषण हो, तुम्हीं मेरा जीवन हो और तुम्हीं मेरे संसाररूपी समुद्र में रत्नस्वरूप हो। अतः हे प्रिये ! तुम मेरे ऊपर अनुकूल हो। क्योंकि तुम्हारे प्रसन्न करने में मेरा चित्त विशेष प्रयत्न कर रहा है ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि तव लोचनं,
धारयति कोकनदरूपम् ।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि,
कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ॥ ४ ॥ प्रिये० ॥

तुम्हारे नील कमल के समान काले दोनों नेत्र हैं ता भी क्रोध से लाल कमल के समान हो रहे हैं (यह उचित नहीं है) किन्तु, इनका कामदेव के बाण (पुष्प) समझ कर कृष्ण को (अपने को या काले नेत्रों का) रंगती हो (लाल करता हो) अथवा अनुरक्त करती हो तो ठीक ही है ॥ ४ ॥

किञ्चित्प्रसन्नां वीक्ष्य आह—

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी,
रञ्जयतु तव हृदयदेशम् ।
रसतु रशनापि तव जघनघनमण्डले,
घोषयतु मन्मथनिदेशम् ॥ ५ ॥ प्रिये० ॥

हे प्रिये ! तुम्हारे कलश के ऐसे कुचों को मणि का हार सुशोभित करै, और वही हार तुम्हारे हृदयदेश को रंजित (अनुरक्त) करै, और जघनों पर करधनी का शब्द होय और वही करधनी कामदेव की आज्ञा की घोषणा दे, अर्थात् मान के वश हो तुमने जो आभूषणों को उतार दिया है उनको फिर धारण करके रतिक्रीडा करो ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं,
जनितरतिरङ्गपरभागम् ।
भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं,
[1]सरसलसदलक्तकरागम् ॥ ६ ॥ प्रिये० ॥

हे कोमल वाणी बोलनेवाली राधिके ! तुम कहो तो स्थलकमलों से भी अधिक शोभायमान, मेरे हृदय का रंजन करनेवाले, रतिरंग में परस्पर आनन्द देने वाले तुम्हारे चरणों में सरस (सुन्दर) महावर लगा दूँ ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं,
[2]धेहि पदपल्लवमुदारम् ।
ज्वलति मयि दारुणो [3]मदनकदनानलो,
हरतु तदुपाहितविकारम् ॥ ७ ॥ प्रिये० ॥

हे प्रिये ! कामदेव की पीड़ा का विनाश करने वाले, मनोहर और नवीन पत्तों के ऐसे अपने कोमल चरणों को मेरे शिर पर भूषण स्वरूप स्थापन करो। क्योंकि दारुणकामाग्नि हमको दुःख दे रहा है उसको शान्त करें। अर्थात् तुम्हारे कोमल २ पत्तों के समान चरणों के मेरे शिर पर रखने से मेरे शरीरकी कामाग्नि दूर हो जायगी ॥ ७ ॥

---

१ 'सरसगलदल' इति पाठः। २ 'देहि' इत्यपि पाठः।
३ 'कदनारुणो' इति पाठः।

इति चटुलचाटुपटुचारु मुरवैरिणो,
राधिकामधि वचनजातम् ।
[1]जयति जयदेवकविभारतीभूषितं,
मानिनीजनजनितशातम् ॥ ८ ॥ प्रिये० ॥

इस प्रकार अतिशय चतुराई और प्रेमरस में पगी, जयदेव कवि की वाणी से सुशोभित (कथित) और मानवती नायिकाओं के लिये अति सुख को देनेवाले और राधिका के प्रति श्रीकृष्णजी के कहे हुए वचन सब वचनों से बढ़े-चढे हैं ॥ ८ ॥

इदानीमात्मानं निरपराधं ज्ञापयन् संभोगार्थं प्रोत्साहयन्नाह—

परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घन-
स्तनजघनयाऽऽक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
[2]स्तनभरपरीरम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ १ ॥

हे हमारे विषय में अनेक तरह की शङ्का रखनेवाली प्रिये ! तुम इस शङ्का को छोड़ दो कि "मैं दूसरी नायिका के पास गया हूं" क्योंकि, जब कठोर कुच और जघनवाली तू मेरे चित्त पर आक्रमण करती है तब मेरे हृदय में दूसरी नायिका के रहने का स्थान नहीं रहता, कामदेव को छोड़कर मेरे चित्त में प्रवेश करने का किसी को अवकाश नहीं मिलता । अतः हे प्रिये ! स्तनों से आलिङ्गन करने की ओर ध्यान दो अर्थात् हमारा आलिंगन करो ॥ १ ॥

यद्येवं न प्रत्येषि तदा मय्यपराधानुकूलं दण्डमाचरेत्याह—

मुग्धे विधेहि मयि निर्दयदन्तदंश-
दोर्वल्लिबन्धनिबिडस्तनपीडनानि ।

१ जयति पद्मावतीरमणजयदेवकविभारतीभणितमतिशातम् , इति पाठः ।
२ 'प्रणयिनि' इति पाठः ।

चण्डि त्वमेव मुदमञ्चय[1] पञ्चबाण-

[2]चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति[3] ॥२॥

हे सुन्दरि ! यदि तुम्हारी शंका दूर न हो तो हमको अति निर्दयता से दाँतों से काट दो और दोनों भुजा रूपी लताओं से दृढ़ बाँध करके अति कठोर स्तनों से हमको पीड़ा दो, यही हमारे लिये दण्ड है। हे अति क्रोध स्वभाव वाली राधिके ! तुम्हीं हमको आनन्द प्रदान करो, क्योंकि इस समय चांडाल कामदेव के बाणों से मेरा प्राण जा रहा है यदि तुम प्रसन्न न होवेगी तो मेरे प्राण को कामदेव ले लेगा ॥ २ ॥

ननु कोपो नास्त्यत आह—

शशिमुखि तव भाति भंगुरभ्रूर्युवजनमोहकरालकालसर्पिणी[4] ।

तदुदितभयभञ्जनाय[5] यूनां त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥३॥

हे चन्द्रवदनी प्रिये ! तुम्हारी कुटिल भौहें जवानपुरुषों के मोहन (मूर्छा) करने में भयंकर काली नागिन हैं। इन भौहों से काटे हुए जवान पुरुषों के लिये तुम्हारा अधरामृत ही सिद्धमंत्र है। जैसे कोई सिद्ध कृष्णसर्पिणी से काटे हुए मनुष्यों को सिद्ध मन्त्र द्वारा विषहीन करता है वैसे ही इन भौंहरूपिणी कृष्णसर्पिणी से मोहित हुए मेरे ऐसे विषव्याप्तों के लिये तुम्हारा अधरामृत ही सिद्ध मंत्र है ॥ ३ ॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि प्रपञ्चय पञ्चमं

तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।

सुमुखि विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय[6]

स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे प्रियोऽहमुपस्थितः ॥४॥

---

१ 'मुदमुद्वह' इति पाठः । २ 'चाण्डाल' इति पाठः ।
३ 'प्रयान्तु' इति पाठः । ४ 'कालसर्पः' इति पाठः ।
५ "विषभञ्जनाय' इति पाठः । ६ 'न वञ्च न'; 'न मुञ्च मां' इति च पाठौ ।

हे कृशाङ्गि ! राधिके ! तुम्हारा यह व्यर्थ का चुपचाप बैठे रहना हमको अत्यन्त दुःख दे रहा है, हे तरुणि ! मीठी २ वाणी से पञ्चम स्वर में हमसे बातचीत करो, और अपनी दृष्टि से मेरे हृदय के सन्ताप को दूर करो अर्थात् तुम्हारे प्रेम पूर्वक देखने ही से मेरे सन्ताप दूर हो जायँगे और हे सुन्दर मुखवाली राधे ! तुम हमसे विमुख हो-अब इस विमुखता को छोड़ो, अब हमको मत ठगो क्योंकि, हे मुग्धे ! मैं तुम्हारा प्यारा स्वयं आकर (अभिसार में) उपस्थित हुआ हूं ॥ ४ ॥

अधुना मानापनोदनाय तदङ्गस्तुतिं करोति—

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
गण्डश्चण्डि चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम् ।
नासाऽभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये
प्रायस्त्वन्मुखसेवया[1] विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥५॥

हे अत्यन्त कोप करने वाली राधिके ! यह दुपहरिया के फूलों के समान (लाल) तुम्हारा अधर ओष्ठ चिकने और महुवे के फूल के समान कान्ति वाले कपोल, नील कमल की शोभा को चुराने वाले ये नेत्र और तिल के पुष्पों के समान यह नासिका सुशोभित हो रही है। हे कुन्द (मौलसिरी) के फूलों के समान दांतवाली प्यारी ! प्रायः तुम्हारे मुख की सेवा करने से ही पुष्पायुध (कामदेव) संसार को जीतता है अर्थात् कामदेव के शस्त्र पुष्प ही हैं। वे पुष्प तुम्हारे मुखादि अवयवों में निवास करते हैं। अतः मेरा यह अनुमान है कि इन्हीं फूलों के द्वारा कामदेव संसार को जीतता है ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं[2]
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम्[3] ।

---

१ 'सेनया' इति पाठः । २ 'मिन्दुसन्दीपकं', 'मिन्दुमत्यास्पदं' इति च पाठौ । ३ 'विजितरम्भम्' इति पाठः ।

रतिस्तत्र कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥६॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारे नेत्र जवानी के मद से अलसाये हैं, मुख चन्द्रमा की बुद्धि से युक्त है अर्थात् तुम्हारा मुख देखने से ऐसा भ्रम हो जाता है कि यह चन्द्रमा ही है, तुम्हारा गमन (चलना) लोगों के चित्त को आनन्द देनेवाला है, तुम्हारी दोनों जांघें रंभा (केले) के वृक्ष की शोभा का तिरस्कार करने वाली हैं, तुम्हारी रतिक्रीडा कामकलाओं से युक्त है और तुम्हारी भौंह सुन्दर चित्र की रेखा के तुल्य है। यहाँ ऊपर कहे हुए विशेषणों से मदालसा, इन्दुमती, मनोरमा, रंभा और कलावती इन अप्सराओं के नाम भी आगए। इससे यह सूचित होता है कि पृथ्वी पर निवास करने वाली राधिका में पूर्वोक्त सभी अप्सराओं के गुण विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

कविः सर्गान्ते आशिषः प्रयुंक्ते—

प्रीतिं[1] वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् ।
यत्र बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्
व्यामोहेन जितं जितं जितमभूद्व्यालोलकोलाहलः[2] ॥७॥

कुवलयापीड (कंस के हस्ती) के साथ संग्राम करने में लगे हुए उस हस्ती के मस्तक को स्पर्श करने के समय राधिका के पीन कुचों का स्मरण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र, और भयभीत हस्ती के मर जाने पर उसको देखकर उसी समय जीत लिया ऐसा देखनेवालों के चित्त को चञ्चल करने वाला कोलाहल हुआ—अर्थात् बालकों ने यह कोलाहल किया कि बालक श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस को जीत लिया। ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र भक्तजनों की प्रीति को बढ़ावें ॥ ७ ॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

---

१ 'सप्रीतिं' इति पाठः । २ 'कंसस्यालमभूज्जितं जितमिति व्यामोहकोलाहलः' इति पाठः ।

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अधुना राधां प्रति तत्सखी ब्रूते

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेशे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ॥ १ ॥

प्रेमपूरित वचनों से बहुत देर तक मृगनयनी राधिका को प्रसन्न करके अन्धकारमय सन्ध्या के समय अपना शृंगार करके श्रीकृष्णचन्द्र के कुञ्जभवन की शय्या पर चले जाने के बाद कोई सखी राधिका का सुन्दर शृङ्गार करके प्रसन्नचित्तवाली राधिका से यों बोली ॥१॥

अथ विंशः प्रबन्धो वसन्तरागेण रूपकताले गीयते—

विरचितचाटुवचनरचनं चरणे रचितप्रणिपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ॥
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० ॥

हे राधिके ! हे मूर्खे ! अनेक प्रकार के सरस वचनों को कहनेवाले, तुम्हारे चरणों में प्रणाम करने वाले, मधुरिपु श्रीकृष्णचन्द्रजी इस समय तुम्हारे अनुकूल वेतस लताओं के पास क्रीडा की शय्या पर गये हैं। अतः उनके पास अति शीघ्र चलो ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम् ।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपैहि विधेहि मरालविकारम् ॥२॥मुग्धे०॥

१ 'मरालनिकारम्' इति पाठः ।

हे कड़ी एवं मोटी जंघा और कुच वाली राधिके ! धीरे २ चरणों को रखती हुई तथा मणियों के नूपुर को बजाती हुई हंस की गति का अनुकरण करती हुई श्रीकृष्णचन्द्र के पास चलो ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम्[1] । कुसुमशरासनशासनबन्दिनि पिकनिकरे भज भावम् ॥ ३ ॥ मुग्धे० ॥

हे सखि राधे ! युवती स्त्रियों को मोहनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र की वंशी का स्वर (शब्द) सुनो, और इस समय कामदेव की आज्ञा के लिये बन्दी (स्तुति करने वाले) कोकिला के भाव को भजो अर्थात् चलके अपनी मधुर वाणी से कृष्ण को प्रसन्न करो ॥ ३ ॥

अनिलतरलकिसलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् । प्रेरणमिव करभोरु करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ॥ ४ ॥ मुग्धे० ॥

हे करभोरु (कनिष्ठिका के नीचे से कलाई तक हाथ के बाहरी भाग के तुल्य चिकनी जाँघवाली) राधे ! तुमको लताओं का समूह वायु से चंचल पल्लवरूप हाथों से प्रेरित कर रहा है कि चलने में विलम्ब न करो । अब शीघ्र चलो अर्थात् वायु से जो लताओं के पत्ते हिल रहे हैं वे मानों हाथों के संकेत से कह रहे हैं कि कृष्ण के पास चलो विलम्ब करना ठीक नहीं । (यह उत्प्रेक्षा है) ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥ ५ ॥ मुग्धे० ॥

हे श्रीराधे ! यदि मेरे कहने का विश्वास न हो तो इन कामदेव के तरङ्ग के वश होके कांपते हुए और श्रीकृष्णचन्द्र के आलिंगन को पहिले हो सूचित करने वाले और मनोहर हाररूप जलधारा वाले इन अपने कुम्भ के ऐसे कुचों से पूछ लो कि ये क्यों हिल रहे हैं ? ॥ ५ ॥

---

१ 'मधुपविरवम्' इति पाठः ।

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम्। चण्डि रणितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ॥ ६ मुग्धे० ॥

हे अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाली राधिके! तुम्हारी सब सखियों ने यह मालूम कर लिया कि तुम्हारा शरीर भी रतिस्वरूप संग्राम के लिये सुसज्जित (तैयार) है। अतः हे सखि ! करधनी के शब्द को करती हुई लज्जा को छोड़ रस में संयुक्त अभिसरण (संकेत स्थल) में चलो ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम्। चल वलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम्[1] ॥ ७ ॥ मुग्धे० ॥

हे सखि राधे ! कामदेव के बाण सदृश सुन्दर नख वाले हाथ से लीलापूर्वक सखी का हाथ पकड़कर चलो और कामदेव के वशी-भूत श्रीकृष्णचन्द्र को अपने कंकणों को हिलाकर अपनी चाल जनावो (अपना आना सूचित करो) ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम्[2] ।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम् ॥ ८ ॥

यह श्रीजयदेव कवि का बनाया हुआ रत्नों के हार को भी तिरस्कृत करनेवाला, और युवती स्त्रियों को उदासीन करने वाला यह गीत हरि में चित्त लगाने वाले भक्तों के कण्ठदेश में सदा निवास करै ॥ ८ ॥

इदानीं सखी कृष्णस्य स्नेहातिशयमाह—

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति प्रियकथां[3] प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः ।

---

१ 'निगदितशीलम्' इति पाठः । २ 'सितरामम्' इति पाठः ।
३ 'स्मरकथाम्' इति पाठः ।

स त्वां पश्यति वेपते[1] पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति

प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः ॥१॥

हे सखि राधे ! अत्यन्त अन्धकारमय निकुंजभवन में बैठे हुए तुम्हारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र जी चिन्ता में व्यग्र होकर विचारते हैं कि—वह राधिका आकर हमको देखेगी, देखकर मीठी २ बातें कहेगी, फिर सर्वाङ्ग से आलिंगन करके प्रसन्न हो जायगी, फिर हमारे साथ क्रीड़ा करैगी, इस प्रकार नाना तरह के मनोरथ करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी ध्यान ही में तुमको देखते हैं, (राधिका अब न जाने क्या २ कहैगी ऐसा सोच कर) काँप उठते हैं, (ध्यान ही में तुम्हारे अंगों का स्पर्श कर) रोमाञ्चयुक्त हो जाते हैं, ध्यान में तुम्हारे साथ रतिक्रीड़ा करने के परिश्रम से पसीने की बूँद टपकने लगती हैं, ध्यान ही में तुम्हारे लिये उठ खड़े होने पर तुमको अपने सम्मुख न पाकर मूर्छित हो जाते हैं अर्थात् तुमपर विशेष अनुरक्त हैं, अतः तुमको उनके पास चलने में अब विलम्ब न करना चाहिये ॥ १ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिपदञ्जनं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलिं

मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।

धूर्तानामपि[2] सारसत्वरहृदां विष्वङ् निकुञ्जे सखि ध्वान्तं

नीलनिचोलचारु सुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥ २ ॥

हे सखि राधे ! नीले रङ्ग के वस्त्र के समान सुन्दर अन्धकार अभिसार (संकेतस्थल) में जाने के लिये जल्दी करने वाली धूर्त सुनयनी नायिकाओं के नेत्रों में कज्जल, कानों में तमाल के गुच्छे, शिर में श्याम कमलों की माला और कुचों पर कस्तूरी की रचना विशेष करके निकुञ्ज में चारों ओर से, उनके सब अङ्गों का आलिंगन

१ 'कम्पत' इति पाठः ।

२ 'धूर्तानामभिसारसंभ्रमजुषाम्'; 'धूर्तानामभिसारसाहसकृताम्' इति च पाठौ ।

करता है। यदि और कोई आभूषण धारण न करो तो कोई चिन्ता नहीं है अन्धकार में ये ही 'कज्जलादिक' आभूषण के काम [1] करते हैं ॥२॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणामाबद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः [2]।
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥३॥

केसर के समान पीले वर्णवाली अभिसारिकाओं को यह मणियों की कान्ति से चारों ओर बँधा हुआ, तमाल के पत्तों के समान अति नीला अन्धकार उन (अभिसारिकाओं) के प्रेमरूपी सुवर्ण का निकषोपल (कसौटी) के समान है। अर्थात् कसौटी पर सोने की परीक्षा के समान इस घोर अन्धकार में प्रेमासक्त अभिसारिका स्त्रियों की परीक्षा होती है ॥ ३ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।
द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडावतीमथ सखी [3] निजगाद राधाम् ॥४॥

इसके बाद हीरे और मोतियों के हार, चञ्चल सुवर्ण की करधनी, बाजूबन्द, कङ्कण इनकी मणियों की कान्ति से प्रकाशित निकुञ्जभवन के द्वार पर श्रीकृष्णचन्द्रजी को देखकर लज्जा करनेवाली राधिका से कोई सखी बोली ॥ ४ ॥

---

१ यह कृष्णाभिसारिका का वर्णन है। इसको एक हिन्दी के कवि ने बड़ी सुन्दरता से दर्शाया है—

नखते सिखलो सजि नील निचोल सुसांझ समै नवला निकसी ।
तिहि हेरत हे हिय के हित सों कवि नन्दन गोकुल चन्दरसी ॥
लखिके चख आतुरि प्रीतम के तिय आनन अञ्चल टारि हँसि ।
नवनीरद मण्डलते निकस्यो मनु देय चकोरन चेत ससी ॥

२ 'रुचिमञ्जरीभिः' इति पाठः । ३ 'सखीमियमित्युवाच' इति पाठः ।

अथैकविंशतितमः प्रबन्धो वराडीरागेण आढकताले गीयते—

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने । विलस रतिरभसहसितवदने ॥
प्रविश राधे माधवसमीपमिह ॥ १ ॥ ध्रु० ॥

हे रतिक्रीड़ा के उत्साह से हास्ययुक्त (प्रसन्न) मुखवाली राधिके ! अति सुन्दर कुञ्जभवन के भीतर वाले केलीभवन में प्रवेश करो और श्रीकृष्णचन्द्रजी के समीप जाकर उनके साथ विहार करो ॥ १ ॥

अपि च—

नवीभवदशोकजलशयनसारे ।
विलस कुचकलशतरलहारे ॥ २ ॥ प्रविश० ॥

हे कलशों समान कुचों पर चंचल हार धारण करनेवाली राधिके ! नवीन अशोक के पत्तों से सजी हुई श्रीकृष्णचन्द्र की शय्या-रूपी महाधन वाले निकुंजभवन में जाकर श्रीकृष्णजी के साथ विहार करो ॥ २ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे ।
विलस कुसुमसुकुमारदेहे ॥ ३ ॥ प्रविश० ॥

हे फूलों के समान कोमल अंगवाली राधिके ! पुष्पों के समूह से बनाई हुई और शुद्ध इस निकुञ्ज भवन में जावो और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विहार करो ॥ ३ ॥

मृदुचलमलयपवनसुरभिशीते ।
विलस[1] रसवलितललितगीते ॥ ४ ॥ प्रविश० ॥

हे शृंगाररस सहित सुन्दर गीतों को गाने वाली राधिके ! मन्द २ बहती हुई और मलयाचल के संसर्ग से शीतल वायुवाले कुंजभवन में जावो और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विहार करो ॥ ४ ॥

---

१ 'विलस मदशरनिकरभीते' इति पाठः ।

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने ।
विलस[1] चिरमिलितपीनजघने ॥ ५ ॥ प्रविश० ॥

हे बहुत मिली (सटी) हुई और पीन (मोटी) जाँघों वाली राधिके ! फैलाई हुई अनेक प्रकार की नवीन लताओं के पत्तों से निबिडित (गझिन) कुञ्जभवन में जावो और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विहार करो ॥ ५ ॥

मधु[2]मिलितमधुपकुलकलिरावे ।
विलस[3] मदनरभसरसभावे ॥ ६ ॥ प्रविश० ॥

हे कामदेव के वेग से पैदा हुए शृङ्गार रस में प्रीति रखनेवाली राधिके ! फूल के रस को पान करने के लिये इकट्ठे हुए भँवरों के गूँजने से शब्दायित कुञ्जभवन में जावो और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विहार करो ॥ ६ ॥

म[4]धुतरलपिकनिकरनिनदमुखरे ।
विलस दशनरुचिरुचिरशिखरे ॥ ७ ॥ प्रविश० ॥

हे दाँतों की कान्ति (चमकाहट) से सुशोभित शिखर मणि वाली राधिके ! तुम वसन्त ऋतु से चञ्चल कोकिल समूह के शब्द से शब्दायमान कुञ्जभवन में प्रवेश करो और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विहार करो ॥ ७ ॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे । कुरु मुरारे मंगलशतानि,
भणति जयदेवकविराजराजे ॥ ८ ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! पद्मावती (जयदेव कवि की स्त्री) के सुख-

---

१. 'विलस चिरमलसपीनजघने' इति पाठः ।
२ 'मधुमुद्रितमधुकुलकलितरावे' इति पाठः ।
३ 'विलस कुसुमशरसरसभावे' इत्यपि पाठः । ४ 'मधुरतर' इति पाठः ।

समूह का विधान करने वाले, आपके गुणों का गान करने वाले श्रीजयदेव कविराज के विषय में अनेक मंगल करिये ॥ ८ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम् ।
अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्मीलव-
क्रीतो दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥१॥

हे राधे! तुमको बहुत दिनों तक मन में धारण करने से बहुत थके हुए और कामदेव से अत्यन्त सन्तापित श्रीकृष्णचन्द्रजी तुम्हारे अमृतरस से भरे हुए बिम्ब (कुंदुरु) के फल के समान ओठ को पान करने की इच्छा करते हैं। इसी कारण से इनकी गोदी को क्षणमात्र (थोड़ी देर) के लिए सुशोभित करो (अर्थात् इनके गोद में जाके बैठो) और (यदि यह कहो कि इनके पास जाने में हमको भय लगता है तो यह ठीक नहीं क्योंकि) तुम्हारे भौंहों के चलाने की शोभा के कुछ हिस्से से नवीन खरीदे हुए दास (नौकर) के समान तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाले (श्रीकृष्ण) के विषय में घबड़ाहट कैसी? अर्थात् इनके पास जाने में कोई डर नहीं है ॥ १ ॥

सा ससाध्वससानन्दं गोविन्दे लोललोचना ।
सिञ्जाना मञ्जुमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र के विषय में चञ्चल नेत्रोंवाली वह राधिका लज्जा और आनन्द के साथ अपने पायजेबों को बजाती हुई कुंजभवन में घुस गई ॥ २ ॥

अथ द्वाविंशतितमः प्रबन्धो वराडीरागेण रूपकताले गीयते—

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम्
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ।

हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम्[1]
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गविकारम् ॥ ध्रु० ॥

चन्द्रमण्डल को देखकर चंचल और ऊँचे तरङ्ग वाले समुद्र के समान राधिका के चन्द्रमुख का दर्शन करके आह्लादित एवं नाना प्रकार के शृङ्गाररस के भावों से युक्त, केवल राधा ही में प्रीति रखने वाले, बहुत दिनों से राधिका के साथ विहार करने की इच्छा रखने वाले और अत्यानन्द से वशीभूत और कामदेव के भाव से परिपूर्ण मुखवाले श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा ॥ १ ॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिलम्बितदूरम् । स्फुटतरफेन-
कदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥ २ ॥ हरि० ॥

अत्यन्त सफेद फेनों के समूह से संयुक्त यमुना जल के प्रवाह के समान अपने हृदय पर जानुपर्य्यन्त लटकते हुए हार को धारण किये हुए श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा (यहाँ यमुनाजल के समान कृष्णचन्द्र का श्याम शरीर और फेन के समान हार की उत्प्रेक्षा है) ॥२॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डनमधिगतगौरदुकूलम्[2] ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥३॥ हरि०॥

पीले रङ्गवाले पराग (पुष्प के भीतर की धूली) के समूह से आच्छादित मूलवाले नील कमल के समान श्याम और कोमल शरीर पर पीताम्बर धारण किये हुए श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा ॥३॥

तरल-दृगञ्चल-चलन-मनोहर-वदन-जनित-रतिरागम् ।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥४॥ हरि०॥

शरद ऋतु में विकसित कमल के बीच में क्रीड़ा करने वाले दो खञ्जन (खञ्जरीट) पक्षी से युक्त तालाव के समान चंचल कटाक्षों

---

१ 'निवासम्' इति पाठः । २ 'मण्डल' इति पाठः ।

की चाल के द्वारा सुन्दर मुख से स्त्रियों में रति के लिए अभिलाषा उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसमकुण्डलशोभम् ।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम् ॥५॥ हरि० ॥

सुखकमल के दर्शन के लिए आपस में मिले हुए के समान कुण्डल से सुशोभित और कोमल मुस्कराहट की कान्ति से सुन्दर विकसित अधरपल्लवों द्वारा नायिकाओं को रति में लालच पैदा करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥६॥ हरि० ॥

चन्द्रमा की किरणों से शोभित मेघ के मध्यभाग के समान सुन्दर कुसुम से सुशोभित केश वाले (यहाँ पुष्पों की चन्द्रमा की किरणों से और बादलों की केशों से उत्प्रेक्षा की गई है) और अन्धेरे में उदय हुआ चन्द्रमा के बिम्ब के समान निर्मल मलयगिरि चन्दन तिलक लगाये हुए श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥७॥ हरि० ॥

अत्यन्त रोमाञ्चित शरीर वाले मैथुन की कलाओं से अधीर और मणियों के समूह की किरणों से प्रकाशित अलङ्कारों से सुसज्जित शरीरवाले श्रीकृष्णचन्द्र को राधिका ने देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवद्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि प्रणिधाय हरिं सुचिरं सुकृतोदयसारम् ॥८॥हरि०॥

श्रीजयदेव कवि के वर्णन की अपेक्षा दूने भूषणों से युक्त और पूर्वजन्म के अधिक पुण्योदय से उत्पन्न तत्त्वस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र जी को चिरकाल तक हृदय में धारण कर प्रणाम करिए ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनेवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः[1] ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये[2]
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

इस समय प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन के समय अति चञ्चल नयनों के अपांगों (नेत्रों के अन्तिम भाग) का उल्लङ्घन करके कर्ण तक जाने के परिश्रम से राधिका जी के नेत्रों से स्वेद (पसीना) जल के समान आनन्द की अश्रुधारा बहने लगी ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहितं[3]-
स्मितं याते गेहाद् बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरं[4] वशाकूतसुभगं
सलज्जा लज्जापि व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ २ ॥

कान आदि के खुजलाने के बहाने से मुसकुराहट को रोक कर सावधान सखियों के कुंज से बाहर चले जाने पर शय्या के ऊपर बैठे हुए और कामदेव के बाणों के वशीभूत सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र के मुख को देखनेवाली राधिका की लज्जा भी लज्जित होकर दूर चली गई। (सखियों के चले जाने पर राधिका कृष्णके साथ निर्लज्ज हो गई)॥२॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ ३ ॥

---

१ 'प्रयासेनेवाक्ष्णोरयलतरतारं गमितयोः' इति पाठः ।
२ 'इदानीं राधायाः प्रियतमसमायातसमये' इति पाठः ।
३ 'विहित' इति पाठः । ४ 'पर' इति पाठः ।

भुजदण्ड की क्रीड़ा से कुवलयापीड़ नामक कंस के हाथी को मारने वाले श्रीकृष्णचन्द्र का रुधिर की बिन्दुओं से संयुक्त बाहुदण्ड, मानो कुवलयापीड़ हस्ती के संग्राम से प्रसन्न श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वयं सिंदूर के बिन्दुओं से सुशोभित किया हो, और जयलक्ष्मी द्वारा मानो पारिजात के पुष्पों से पूजित, श्रीकृष्णचन्द्र का भुजदण्ड भक्तों की रक्षा के लिये सब से बढ़-चढ़के हैं ॥ ३ ॥

इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दे एकादश सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

गतवति सखिवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरे शरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम्[१] ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥१॥

कुंजभवन के बाहर सखियों के चले जाने पर अधिक लज्जा के भार से कामदेव के बाणों के वश में हो जाने के अभिप्राय से उठे हुए ईषत् हास्य (मंद मुस्कराहट) से युक्त अधर ओष्ठ वाली, अनुराग से संयुक्त और बारम्बार नवीन पल्लव और पुष्पों की शय्या को निहारने वाली राधिका को देखकर अपनी प्यारी से श्रीकृष्णजी बोले ॥ १ ॥

---

१ 'स्मरपरवशाकूत' इति पाठभेदः ।

अथ त्रयोविंशतितमः प्रबन्धो विभासरागेण एकतालीताले गीयते—

किसलयशयनतले कुरु कामिनि चरणनलिनविनिवेशम् ।
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ॥ २ ॥
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर माराधिके ॥ ध्रुव० ॥

हे सुन्दरी राधिके ! एक क्षण मात्र (थोड़ी देर) के लिये अधीन नारायण के (मेरे) प्रति तुम क्षणमात्र के लिये अनुकूल हो जावो । अनुकूल होने का प्रकार दिखाते हैं कि कामिनी ! इस कोमल २ पत्तों की शय्या पर चरणारविन्दों को रखो और अपने शत्रु इस नवीन कोमल पत्तों की शय्या को तिरस्कृत करो अर्थात् जब तुम इनके मस्तक पर चरण रखोगी तब तुम्हारे चरणों की कान्ति हरण करने से शत्रु के समान ये शय्या के पल्लव तिरस्कृत हो जायँगे ॥ २ ॥

करकमलेन करोमि चरणमहमागमिताऽसि विदूरम् ।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम् ॥३॥ क्षण० ।

हे राधे ! आपको मैं बहुत दूर ले आया हूँ, आप थक गई होंगी, इसलिये मैं आपके चरणों को अपने करकमलों से दबा दूं । और साथ चलने से शूरवीर नूपुरों का मेरे समान ही उपकार करो अर्थात् जिस प्रकार आलिंगन आदि से मेरा उपकार करती हो वैसे ही इन पायजेवों को भी शय्या पर रखकर इनका भी उपकार करो ॥ २ ॥

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ॥३॥ क्षण० ॥

हे सुन्दरी ! आप चन्द्रमण्डल सदृश मुखबिम्ब से निकले हुए अमृत के समान अनुकूल वचनों को कहो और विरह के समान आपके स्तनों के ऊपर के वस्त्र को मैं हटाऊँगा (अर्थात् तुम मुझसे मीठी मीठी बातें करो मैं तुम्हारा अँचरा हटाकर तुम्हारे मनोहर कुचों को देखता हूं) ॥ ३ ॥

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव पुलकितमतिदुरवापम् ।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ॥४॥क्षण०॥

मेरा आलिङ्गन करने के लिए मेरे सम्मुख रोमाञ्चित और दूसरों को दुर्लभ कलश के ऐसे कुच को मेरी छाती पर रखो और कामदेव की पीड़ा को दूर करो ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपनय भामिनि जीवय मृतमिव दासम् ।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम् ॥५॥ क्षण० ॥

हे भामिनी! तुम हमको अधर सुधा का पान करावो और तुम्हारे में आसक्त चित्त वाले विलास रहित, विरहरूप अग्नि से झुलसे और मरे हुए के समान मुझ दास को जीवित करो ॥ ५ ॥

शशिमुखि मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिदानम् ।
मम श्रुतियुगले पिकरवविकले शमयाचिरादवसादम् ॥६॥ क्षण० ॥

हे चन्द्रमुखी राधे! अपने कण्ठ के गीतों के शब्द के समान अपनी करधनी को बजाओ और कोकिला के शब्दों से विकल मेरे कानों के दुःख को शान्त करो, सुखी करो (विरहावस्था में कोयल का शब्द अच्छा नहीं लगता है) ॥ ६ ॥

किञ्चिदवलोकयन्तीमाह—

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।
मीलति[1] लज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम् ॥७॥क्षण०॥

हे सुन्दरि! अत्यन्त निष्फल क्रोध से व्याकुल हुए हमको देखने के लिये इस समय तुम्हारे नेत्र लज्जित हुए की तरह बन्द हो रहे हैं। इस कारण तुम (क्रोध का) विराम करो और रति के खेद को छोड़ो अर्थात् क्रोध को छोड़कर मेरे साथ रमण करो ॥ ७ ॥

---

१ 'लजितमिव नयनं तव विरमति सृजसि वृथा रतिखेदम्' इति पाठभेदः ।

श्रीजयदेवकवेरिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम् ॥८॥ क्षण० ॥

पद पद में श्रीकृष्णचन्द्र के आनन्द का वर्णन करनेवाला श्रीजयदेव कवि का बनाया यह गीत रसिक जनों में रसभाव के आनन्द को उत्पन्न करे ॥ ८ ॥

इदानीं सुरतारम्भं निरूपयति—

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निबिडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः[1] ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियंभावुकः ॥ १ ॥

उन श्रीकृष्ण और राधिका जी का परम प्यारा सुरत (केलिकलह) का प्रारम्भ हुआ। जिस सुरत के समय गाढ़ आलिङ्गन में रोमांच विघ्नकारी मालूम होते थे, क्रीड़ा के समय अभिप्राय पूर्वक देखने में निमेष (पलक का गिरना) से विघ्न जान पड़ता था, अधरों का सुधापान करने में बात भी विघ्नकारक होती थी और नाना प्रकार की क्रीड़ा और कामकलाओं से संयुक्त सुरत रूप संग्राम में आनन्द की प्राप्ति भी विघ्न सी मालूम पड़ती थी ॥ १ ॥

तदेव विपरीताख्यं उक्तिवैचित्र्येण कथयति—

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ।
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमापतदहो कामस्य वामा गतिः ॥२॥

राधिका के हाथों से बँधे, कुचों के बोझ से दबे, नखों से चिकोटी

---

१ 'कथानर्मभिः' इत्यपि पाठः ।

काटे गये, दाँतों से काटे गये अधर वाले, कटि से ताडित, केशों को हाथों से पकड़कर नमाये, अधरों की मधुरता के रस से संमोहित श्रीकृष्णचन्द्र को अकथनीय तृप्ति हुई। इसी कारण से कामदेव की बड़ी टेढ़ी गति है! अर्थात् दूसरा कोई, यदि इस प्रकार के कार्य करे तो क्रोधित हो जाता है और प्रेयसी द्वारा ये सब कार्य होने से प्रसन्नता होती है। अतः कामदेव की गति टेढ़ी कही गई ॥ २ ॥

तदेव पुनः कथयति—

मारांके[1] रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहसप्रायं
कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्ध्यति ॥३॥

सुरतक्रीड़ारूपी संग्राम में कामचिह्न के स्पष्ट भासमान होने पर उस राधा ने कान्त (प्यारे) श्रीकृष्णजी के जीतने के लिये कुछ समय तक सम्भ्रमपूर्वक साहस से ऊपर (विपरीत) रति प्रारम्भ की। तब उनकी जंघा जड़ के समान होगई, भुजलता शिथिल पड़ गई, वक्षस्थल कम्पित हो गया, हृदय धड़कने लगा और नेत्र बन्द हो गये। इसी लिये स्त्रियों को पुरुषार्थ का रस कहाँ से सिद्ध हो सकता है? अर्थात् नहीं सिद्ध हो सकता ॥ ३ ॥

तस्याः पाटलपाणिजांकितमुरो निद्राकषाये दृशौ
[2]निर्धूतोऽधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथाञ्चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिःकामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥ ४ ॥

गुलाबी नखों से चिह्नित उस राधिका का हृदय (दोनों स्तन),

---

१ 'वामाङ्ग' इति पाठः ।   २ 'निर्धौतोऽधर' इति पाठः ।

रात्रि के जागरण से लाल नेत्र, चुम्बनादिक से नष्ट हुई लालिमावाले अधर ओठ, बिखरी और ढीली पुष्पों की मालावाले केश, ढीले पड़े हुए कमर पर की करधनी के वस्त्र (फुफुती) इन सबों को प्रातःकाल के समय देखने से पति (श्रीकृष्णचन्द्र) का मन कामदेव के बाणों से विद्ध हो गया, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है जिसको बाण लगते हैं उसी के मन को वेधते हैं। परन्तु यहाँ नखक्षत १, जागरण २, चुम्बन ३, केशों को खींचना ४, वस्त्रग्रन्थिविमोचन ५, ये कामदेव के पाँचों बाण लगे राधिका को, श्रीकृष्णचन्द्र का मन विध गया। यही बड़े अचरज की बात है ॥ ४ ॥

त्वामप्राप्य मयि स्वयम्वरपरां क्षीरोदतीरादरे
शंके सुन्दरि कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वासाञ्चलं राधायाः
स्तनकोरकोपरि लसन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥ ५ ॥

हे सुन्दरि ! क्षीरसमुद्र के तट पर मेरे स्वयम्वर के लिए आई हुई तुमको नहीं पाकर मुग्ध होकर महादेवजी ने विषपान कर लिया ऐसा मैं अनुमान करता हूँ। इस प्रकार की अपनी पूर्वकथा से दूसरी ओर मन लगाने वाली राधिका के कुचों पर का वस्त्र हटाकर उसके स्तनों के अग्रभाग (ढेपुनी) को देखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी आप लोगों की रक्षा करें ॥ ५ ॥

व्यालोलः[1] केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ[2] कपोलौ
स्पष्टा दष्टाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्ची काञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितस्रग्धरेयं धिनोति ॥६॥

---

१ 'व्याकोशः' इति पाठः । २ 'स्वेदमोक्षौ' इति पाठः ।

केशपाश (जूडा) इधर उधर बिखरा हुआ है, अलकावली चञ्चल हो रही है, स्वेदों के कणों से कपोल व्याप्त हो गये हैं, काटे हुए अधरों की शोभा स्पष्ट दिखाई दे रही है, कलश के ऐसे कुचों की कान्ति से मोतियों का हार हार गया है, अर्थात् कंचुकी (चोली) के न रहने से कुचों की शोभा से हार की शोभा हार गई है, करधनी किसी दिशा को चली गई है अर्थात् अपने स्थान पर नहीं है। यद्यपि ऐसी पूर्वोक्त दशा राधिका की हो रही है तो भी अपने हाथों से स्तन और जघनों को आच्छादित (ढांप) कर अपने इस प्रकार के बेढंगे रूप को देखती हुई, रात की मुरझाई हुई फूलों की माला को धारण करने वाली राधिका श्रीकृष्णचन्द्र के मन को प्रसन्न करती है॥ ६॥

ईषन्मीलितदृष्टि मुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताऽधरम्।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनो धन्यो धयत्याननम्॥ ७॥

कामक्रीड़ा की उत्कण्ठा से उत्पन्न श्वास से कुछ चञ्चल (हिलते हुए) स्तनों के आलिंगन करने से अधिक हर्ष के कारण शिथिल अतएव कार्य में अक्षम मृगनयनी के कुछ बन्द नेत्र वाले, सुन्दर हास्य से युक्त और सीत्कारों की परम्परा के वश अप्रगट और व्याकुलता से निकले हुए शब्दों से विकसित और दांतों के किरणों से धुले हुए अधर वाले मुख को भाग्यवान् ही पान करते हैं॥ ७॥

अथ निर्गतबाधा सा राधा स्वाधीनभर्तृका।
निजगाद रतिक्लान्तं कान्तं मण्डनवाञ्छया॥ ८॥

इति च सहसा प्रीतं सुरतान्ते मानितातिखिन्नाङ्गी।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम्॥९॥

इसके बाद सुरत (संभोग) के अन्त में सब प्रकार से कामदेव

की पीड़ा शान्त होगई और अपने गुणों से अपने आधीन में भर्त्ता (श्रीकृष्णजी) हो गये तब वह शृंगार कर रति के खेद (परिश्रम) से थके हुए अपने कान्त से सम्मानिता और रति के परिश्रम से थकी हुई राधिका सुरत के बाद आदरपूर्वक आनन्द के साथ गोविन्द से राधिकाजी बोली ॥ ९ ॥

अथ चतुर्विंशतितमः प्रबन्धो रामकरीरागेण यतिताले गीयते ।

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ॥ १ ॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने ॥ ध्रु० ॥

जिस समय हृदय को आनन्द देने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी क्रीड़ा कर रहे थे उसी समय अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी से राधिकाजी बोलीं कि हे यदुनन्दन! चन्दन के समान अति शीतल अपने हाथों से कामदेव के मंगल कलशों के सदृश कुचों पर कस्तूरी के पत्र (मछली, फूल, वेल, बूटे) लिखिये ॥ १ ॥

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने । त्वदधर-
चुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रिय लोचने ॥२॥ निज० ॥

हे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी! कामदेव के बाणों को छोड़ने वाले मेरे नेत्रों में भ्रमरों के समूह के समान और आपके अधरों के चुम्बन से नष्ट हुए मेरे कज्जल को उज्ज्वल (साफ, दूबारा) करो ॥ २ ॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविलासनिरोधकरे श्रुतिमण्डले । मनसिज-
पाशविलासधरे शुभवेष निवेशय कुण्डले ॥३॥ निज० ॥

हे सुन्दर वेष को धारण करनेवाले प्यारे! नयनरूपी हरिणों के विलास को रोकनेवाले मेरे कानों में कामदेव के पाश के समान कुण्डल पहनाइये ॥ ३ ॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे। जित-कमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे ॥४॥ निज० ॥

हे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी! कमलों को जीतनेवाले निर्मल मेरे सुन्दर मुख पर शोभायुक्त और जिसके ऊपर भ्रमरों का समूह गिरता है ऐसी काम को उत्पन्न करनेवाली अलकावलियों को सुधारो अर्थात् भ्रमरों के सदृश मेरे काले केशों को गूथो ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे। विहित-कलंककलं कमलानन विश्रमितश्रमशीकरे ॥५॥ निज० ॥

हे कमल के समान मुखवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी! रति के परिश्रम में स्वेद (पसीने) विन्दुओं से युक्त अर्द्धचन्द्र समान ललाट में कलङ्क रेखा के समान कस्तूरीरस से तिलक करिये ॥ ५ ॥

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे। रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे ॥६॥ निज० ॥

हे मान को देनेवाले यदुनन्दन! कामदेव की पताका के चामर (चंवर) सदृश, रति में ढीले हुए सुन्दर और मयूर पिच्छ के समूह के समान मेरे केशपाश (जूरे) में पुष्प लगाइये ॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे। मणिरशना-वसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे ॥ ७ ॥ निज० ॥

हे उदारचित्त श्रीकृष्णचन्द्रजी! आप मेरे कामदेवरूपी मदमाते हाथ के कन्दरा (गुफा) और शृङ्गाररस से निबिड (गझिन) मेरे सुन्दर जघनों पर मणियों की करधनी, वस्त्र और आभूषणों को पहनाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने। हरि-हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥८॥ निज० ॥

हे भक्तो ! श्रीकृष्णचन्द्र के स्मरण (ध्यान) रूपी अमृत से कलियुग में किए हुए पापों का विनाशक, भूषण स्वरूप, कल्याणदायी श्रीजयदेव कविराज के गीत में अपने हृदय को (तत्पर) करिये ॥८॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-

र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम् ।

कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा-

विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाऽकरोत् ॥१॥

हे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आप अपने हाथों से मेरे कुचों पर पत्र (सुन्दर पत्रों का आकार) की रचना कीजिये । कपोलों पर चित्र (फूल पत्तो, इत्यादि) लिखिये, जघनस्थलों पर कांची (करधनी) पहनाइये और अपने हाथों से मेरे केशपाश को पुष्पों से गूथिये । और हाथों में कङ्कण और चरणों में नूपुर (पायजेब) पहनाइये । यह राधिका ने श्रीकृष्णचन्द्रजी से कहा तब पीताम्बरधारी श्रीकृष्णचन्द्र ने प्रसन्न होकर वैसा ही किया अर्थात् राधिका का सब शृङ्गार किया ॥१॥

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणश्रेणीमणीनां गणे

सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसङ्कलनया बिभ्रद्वपुर्विक्रियाम् ।

पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुः शतैः

कायव्यूहमिवाचरन्नुपचिताकूतो हरिः पातु वः ॥२॥

पलङ्ग के स्थानापन्न शेषजी के मस्तक की मणियों में पड़े हुए प्रतिबिम्ब (परछांई) के सम्बन्ध से अनेक रूपों को धारण करते हुए चरणों की सेवा करने वाली लक्ष्मीजी को सैकड़ो नेत्रों से देखने के लिये अनेक शरीरों को धारण करने वाले कामदेव के भाव से युक्त श्रीकृष्णचन्द्र जी आप लोगों की रक्षा करें ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानञ्च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥३॥

गान्धर्वकला (गान विद्या) में जो चतुराई है, श्रीकृष्णचन्द्र का जो ध्यान है, और जो काव्यों में श्रृङ्गार रस के अनेक भेदों की रचना है ये सब श्रीकृष्णचन्द्र में एकाग्र चित्तवाले पण्डित श्री जयदेव कवि के बनाये हुए गीतगोविन्द से पण्डित लोग शोधन करें और श्रृङ्गार रस के काव्य की रचना करना हो—वे इन सबके विषय में इस ग्रन्थ से शिक्षा ग्रहण करें ॥ ३ ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य ।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥ ४ ॥

श्रीराधा देवी के गर्भ से श्रीभोजदेव के पुत्र श्रीजयदेव कवि की यह गीतगोविन्द को कविता पराशरादिक श्रेष्ठ कवियों के कण्ठ में अर्पित होय ॥ ४ ॥

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृतमृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते ।
माकन्द क्रीतकान्ताधरणितलं गच्छ यच्छान्तिभावं
यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ॥५॥

श्रीजयदेव कवि अपने काव्य की प्रशंसा में कहते हैं कि इस संसार में जब तक श्री कवि के श्रृङ्गार रस के भाव का काव्य विराजमान है तब तक हे माध्वीक (महुवा) ! इसके सामने तेरी चिन्ता करना ठीक नहीं, हे शक्कर ! तू कठोर है, हे द्राक्षे (दाख) ! तुमको

कौन देखेगा, हे अमृत! तू इसके सामने मरा हुआ है, हे क्षीर (दुग्ध)! तेरा रस (स्वाद) जल के सदृश है, हे आम्र! तू भी तब तक पाताल में चला जा (क्योंकि तुम्हारा नाम ही अधर है) अर्थात् जयदेव कवि के इस सर्वोत्तम काव्य के सामने कुछ सुन्दर न लगेगा, सब फीके पड़ जायँगे ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीजयदेवकविविरचिते गीतगोविन्दे द्वादशः सर्गः ॥१२॥

॥ गीतगोविन्दकाव्यं समाप्तम् ॥

मुद्रक—पं० वैकुण्ठनाथ भार्गव, आनन्दसागर प्रेस, गायघाट, बनारस १.